

तौलों सोइ कारज करि आयो । मृतक गुरू लखि वचन सुनायो
गुरूको बेगि चलौ लै घरे । इनको नहिं जानो तुम मरे ॥
वरजन लगे सबै तहँ लोगा । मान्यो नहिं येकहू नियोगा ॥

दोहा—श्मशानकी भूमिते, गुरूको घर ले आय ॥

गिरदामें वोढ़कायकै, देतभये बैठाय ॥ २ ॥

चेला कह्यो जोरिँकै हाथा । हरि गुरू वचन सदा सति नाथा ॥
यह है शास्त्र वेद मर्यादा । मोहिं निदेश दिय युत अह्वादा ॥
जब कारज करि ऐहैं प्राता । तब तोसों कहिहैं यक वाता ॥
सो वह बात मोहिं कहि दीजै । तब अपनो तनु त्यागन कीजै ॥
तब चेलाको गुणि सतभावा । गुरूको प्राण कायमें आवा ॥
चेलासों गुरू कियो उचारा । हमहिं कहन यह रह्यो विचारा ॥
संतन हमते कम नहिं मानौ । परम गुरू संतनको जानौ ॥
तब चेला बोल्यो सुखमानी । स्वाभि परै अटपट यह जानी ॥
जलदी मोसों बनिहै नाहीं । वरस रोज न तजै तनु काहीं ॥
मोहिं संतनको सेव सिखाई । रामधामको नाथ सिधाई ॥
सुनि चेलाके वचन रसाला । जिये वर्षदिन गुरू विशाला ॥
चेलाहि संतन सेव सिखाई । गये धाम हरि अति सुखदाई ॥

दोहा—प्रियादास तामें कह्यो, कहीं एक तुक तासु ।

चरित बहुत संक्षेपते, मैं कछु कियो प्रकाशु ॥ ३ ॥

(सांचौ भाव जानि प्राण आइबो बखान कियो करो
भक्त सेवा करी वर्षलों देखाइये ॥)

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे सप्तनवतितमोऽध्यायः ९७

अथ सुरसुरानंदकी कथा ॥

दोहा—कथा सुरसुरानं की, सादर करौं बखान ॥

महिमा महाप्रसादकी, कीन्ह्यो सत्य जहान ॥ १ ॥

रहै राजगुरु संतन सेवन । करै निरंतर अति प्रसन्न मन ॥
 महाप्रसाद परम अधिकारी । जो कोहुके कर लेहि निहारी ॥
 तौ वरवस लै भोजन करहीं । निज थलते कवहुं नहि टरहीं ॥
 यक दिन यक भंगिनि करमाहीं । लीन्हें बरा भातही काहीं ॥
 लिहेजाति लखि कोउ दुष्टजन । कह्यो दुष्टता करि अपनेमन ॥
 ठिग सुरसुरानंदते जाई । जब पूछै तब तेहि बताई ॥
 मैं लीन्हें हौं महाप्रसादा । भंगिनि सोइ किय युत अहादा ॥
 सुनि सुरसुरानंद द्रुत धाये । लै जवरई वदन में नाये ॥
 पीछे पीछे चेलहु धाई । लेत भये विनात तहँ जाई ॥
 तब स्वामी तकि कै तिन ओरा । कहत भये करे कोप अथोरा ॥
 कस तुम महाप्रसाद न पायो । अस कहि करि उवांत दरशायो ॥
 यक यक चाउर तुलसीदल युता सहित सुगंध कटत भो तब द्रुत ॥

दोहा—चेलहु कियो उवांतु जब, उठत भई दुर्गंध ॥

नहिं प्रभाव जाने गुरू, ते चेला माति अंध ॥ २ ॥

महिमा महाप्रसादकी, प्रगट सुरसुरानंद ॥

देखरायो सब जननको, तेउ लखि लेह अनंद ॥ ३ ॥

यह विश्वास प्रधानता, जामें होय सो संत ॥

मैं वरण्यों संक्षेपते, तिनके चरित अनंत ॥ ४ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे

अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

अथ सुरसुरीकी कथा ॥

दोहा—तिया सुरसुरानंदकी, जासु सुरसुरी नाम ॥

तासु कथा अभिराम अति, कहौं श्रवण सुखधाम ॥ १ ॥

छंद—यक समय पति युत त्यागि गृह हरिभजन हित बनको

॥ गई ॥ तहँ वसि यकंतहि भजन लागे करन दोऊ सुख छई ॥
 बहु दिवश बीते योंहिं यक दिन म्लेच्छ यक कामी महा ॥ गु-
 णि रूपवती विशेष यहि तिय करि यतन भोगन चहा ॥ १ ॥
 पति तासु लेवे फूल समिधिहिहेतु जब कहुँ काढ़े गयो ॥ तब दुष्ट
 वह ढिग नारिके अति प्रीतिसों गवनत भयो ॥ तकि ताहि आ-
 वत सुमिरि हरिको करत भई पुकार है ॥ क्षगताहि सिंह स्वरूप
 हरि लैगये म्लेच्छ गवॉर है ॥ २ ॥

दोहा—यहि प्रकार सुरसुरीकी, सत्य राखि लिय राम ।

कह्यो कथा संक्षेपते, अहँ विपुल जंग ठाम ॥ २ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

अथ नरहरियानंदकी कथा ॥

दोहा—यह नरहरियानंदकी, करों कथा परकास ॥

जासु श्रवण अनयासही, होत नाश भवत्रास ॥ १ ॥

श्री नरहरियानंद विख्याता । रहै साधुसेवी अवदाता ॥
 यक दिन संत बहुत घर आये । तिनको लखि मन मुदित टिकाये
 सीधा सरंजाम घर माहीं । रहै रहै लकरी घर नाहीं ॥
 वरसत रहै मेह बहु वारी । मांगन गये ठौर दुइ चारी ॥
 मिली न लकरी तिय सों आई । कह्यो वचन यह अति हरषाई ॥
 मेरो टांगादेह निकासी । ले आऊं कहुँते द्रुत खासी ॥
 नारि दियो टांगा चलि आपू । बाहिर गावँ गये निहपापू ॥
 वरसत जल यकदेवीके घर । जाय खड़ेभे तेहि देहरी पर ॥
 गुण्यों मनहि वर्षाहै भारी । लकरी को कहँ जाउँ सिधारी ॥
 क्षुधित संत बहु बसे अगारा । बने तौ देवीकेर केंवारा ॥

परै जबर झूरे अति जोई । इनते संतन होय रसोई ॥
अस गुणि टांगा लै केंवार पर । हनत भयो तब देवी करि डर ॥

दोहा—तेहि आगे ठाढ़ी भई, धरि इक कन्या रूप ॥

क्यों कपाट झारत अहै, कही सो वचन अनूप ॥ २ ॥

तब इन कह्यो वचन कछु हूखे । लकरी चही संतहैं भूखे ॥
देवी कह केंवार मति फारै । एक बोझा मैं बड़े सकारै ॥
नित तुव घर देहौं पहुँचाई । करु तदबीर और घर जाई ॥
तब ये उर अति आनंद छाये । अपने घर तुरंत चलि आये ॥
पीछे तासु कवारिनि वेषा । लिहे देवि लकरी सब देषा ॥
एक बोझ तेहिं डारि दुवारै । निज मंदिर गवनी सुखधारे ॥
ये सब संतन अशन कराई । सेवा करि दैदियो विदाई ॥
देवी एक बोझ लकरी नित । डारि जाय नित द्वार संतहित ॥
जाहिर भई गावैं यह बाता । एक द्विज रहै परो विख्याता ॥
तेहि तिय लकरी देखि बठानी । अपने पतिसों बोली बानी ॥
लै आवहु लकरीहैं नार्हीं । मिलैं न जाहुँ कहां तेहिं काहीं ॥
नारि कियो तब वचन उचारा । एक परोसी आय तुम्हारा ॥

दोहा—देवी मंदिर जायकै, फारन लग्यो केंवार ॥

डरि देवी डारै नितै, लकरी बोझ दुवार ॥ ३ ॥

यक तुम अहौ नार्हीं ऐ आनन । कठत अहै कठतो कछु आनन
कह द्विज टांगा दे मोहिं लाई । जैहौं मैंहूँ उतहि सिधाई ॥
मोहिं देवी देहैं कस नार्हीं । लकरी लै ऐहौं घरमार्हीं ॥
तहँ तिय कह ज़रूर तुम जाहू । करहु परोसी सम सउछाहू ॥
जाय विप्र लै हाथ कुल्हारी । देवीके केंवार पर मारी ॥
तब देवी करि कोप अपारा । तेहि उठाय पटक्यो बहु बारा ॥

गिरचो सो दशै हाथ पर जाई । दोउ आंखी बाहेर कटि आई ॥
 भैबड़ि वार न पति घर आयो। तब तेहिं तिय कछु शोच बढ़ायो ॥
 खबरि लेन सुनि निनि केरी। गै तिय तहां दशा सो हेरी ॥
 देवि द्वार कूटन शिरलागी । देवी प्रगटि कही सुख पागो ॥
 भक्तराजकी करि समताई । ताही सम तू करी ठिठाई ॥
 तेरे घरमें जो कोउ होई । मों कर आजुहि नशिहै सोई ॥

दोहा—तब द्विज तिय बहु विनय किय, रक्षा करु मम मात ॥
 जिये मोर पति करहु मैं, कहो देवि जो बात ॥ ४ ॥

कवित्त—देवी कह्यो जौन एक बोझा नित लकरी में नरहरिया
 नंदके दुवार पहुँचावती ॥ सोई तुम लैकै बेरी बदि पहुँचाओ
 तहैं तब पति तेरो बचै यहै बात भावती ॥ नहि तो न बचै केहुं
 सुनि तब कही नारि दैहैं लकरी में सुनि देवि सुख छावती ॥ ताके
 पतिको जिआय दन्ह्यो उख्यो हरषाय देवीकी बेगारि सोईधारि
 दुख पावती ॥ १ ॥

दोहा—ताते समता काहुकी, करत विवेकी नाहि ॥
 करत जे तिनकी होति है, दशा यही जगमाहि ॥ ५ ॥
 तामें नाभाको कह्यो, छप्पय यह लिखि देहुं ॥
 बांचि सबै संतहु दिये, मानहु मूढ़न केहुं ॥ ६ ॥

छप्पय—वर झर लकरी नाहि शक्तिको सदन उदारै ॥
 शक्ति भक्तिसों बोलि दिनहि प्रति वरही डारै ॥
 लगी परोसिनि हौंसि भवानी लै सो मारचो ॥
 बदलेकी बेगारि मूढ़ वाके पर डारचो ॥
 रत प्रसंग कलिकाल देखितनुमें तई ॥
 श्रीनरहरियानंदकोकरदाता दुर्गा भई ॥ १ ॥

दोहा—श्रीनरहरियानंदके, ऐसे चरित अनंत ॥

मैं वरण्यों संक्षेपते कृपा करें सबसंत ॥ ७ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेशत

तमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

अथ पद्मनाभजीकी कथा ॥

दोहा—पद्मनाभजीकीकथा, कहौं परम सुखदानि ॥

राम नाम महिमा लियो, कृपा कबीरहि जानि ॥ १ ॥

एक समय सुरसरि स्नाना । करि डेराको कियो पयाना ॥
तहँ यक साहु धनाढ्य महाना । काशी रह्यो जासु स्थाना ॥
बिगारि जातभो तासु शरीरा । भै दुर्गंध गये परि कीरा ॥
साहु मानि तब मनाहिं गलानी । बूढ़न हेतु गंग दुख मानी ॥
आवत चलो रहै मग माहीं । तेहिं परिवारहु लोग तहाहीं ॥
ताके पछि आवत रोवत । पद्मनाभजी भे तेहि जोवत ॥
पूछ्यो लोगन पाहिं हवाला । कहे ते सब वृत्तांत उताला ॥
पद्मनाभ उर दया महानी । तब उपजी अस बोले वानी ॥
सहित कुटुंब संतको सेवन । करै कबूल सत्य अपने मन ॥
धन निज रघुपति हेतु लगावै । राम भक्ति हिय में उपजावै ॥
तौ तुरंत याको तनु सिंगरो । शुद्ध होयगो जो है बिंगरो ॥
तब कुटुंबके सुनि यह बानी । कियो कबूल साहु युत मानी ॥

दोहा—जिनकी नाम उपासना, नामहि जिनको मंत्र ।

नामहिकी सेवा जिन्हैं, नामहि पूजा यंत्र ॥ २ ॥

जप तप तीरथ नामहि मानै । जपत निरंतर नामहि ठानै ॥
ऐसे पद्मनाभ जे संता । शिष्य कबीर भक्त सिय कंता ॥
लै तेहिं साहु साथ सुख छाई । गंगाजी समीप द्रुत आई ॥

तेहि हिलाय जल कंठ प्रयंता । करिकै ठाढ़ कह्यो मतिवंता ॥
 तीनि बार करि राम उचारा । बुढ़की देहु न करहु अवारा ॥
 सुनिकै साहु तैसही कान्ह्यो । कृमि दुर्गाधि दूरि करि दीन्ह्यो ॥
 सकल शरीर दिव्य है गयऊ । निज नयनन निरखत सब भयऊ ॥
 जन समूह लखि काशीवासी । जयजय शोर कियो सुखरासी ॥
 साहु कुटुम्ब सहित घर जाई । दान कियो बहु द्विजन बोलाई ॥
 पद्मनाभ शिषि है पुनि सोई । भववासना सकल दिय खोई ॥
 श्रीकबीर ढिग जाय उताला । पद्मनाभ सब कह्यो हवाला ॥

दोहा—राम नाम परभाव सति, स्वामि लख्यो हम आज ॥

तीनबार उच्चार करि, साहु भयो कृत काज ॥ ३ ॥

सिगरी व्यथा शरीरकी, दूरि हैगई आशु ॥

सुनि कबीर कह नामको, बड़ो प्रभाव प्रकाशु ॥ ४ ॥

तुम प्रभाव जान्यो कहा, राम नामको जौन ।

जानत तौ त्रयबार कस, नाम लेवावत तौन ॥ ५ ॥

नाम कहनके भासहीं, तौ रुज होत विनाश ॥

तामें द्वै तुक कहतहों, वरण्यो जो प्रियदास ॥ ६ ॥

कवित्त—राम नाम कहे बेर तीनिमें विनाश होत, भयोई
 नवीन कियो भक्ति मति धीरहै। गये गुरु पास तुम महिमा
 न जानी अहो, नाम भास काम करै कही यों कबीरहै ॥

दोहा—पद्मनाभको चरित यह, वर्णन कियो समास ॥

सुनत संतजन लहतहैं, हियमें परमहुलास ॥ ७ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यंकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे

एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

अथ तत्त्वा जीवाकी कथा ॥

दोहा—तत्त्वा जीवाकी कथा, कहों रहैं द्वै भाय ॥

वासी दक्षिण देशके, भक्ति सुधारी राय ॥ १ ॥

दयावान अति धीर उदारा । सदा धर्म में प्रीति अपारा ॥
द्विजसेवी साधुनको प्यारे । एक समय अस मनहि विचारे ॥
अवशि गुरू अब कीन्ह्यो चाही । दोउ भाई ह्वै अति उत्साही ॥
सौं पि सुतनको सब गृह काजा । यह उपाय किय ढिग दरवाजा ॥
झूर दारु गाड़त भे आनी । आशय यह निज मन अनुमानी ॥
जासु चरण जल सींचन पाई । पीका फूटि हरित ह्वै जाई ॥
ताही संतकाहँ गुरु करिहैं । यह अपार भवसागर तरिहैं ॥
अस विचारि दोउ बड़े प्रभाता । जाय गांव बाहर हरषाता ॥
बैठहिं मगु जो साधु सुखारी । निकसै माला कंठी धारी ॥
ताको विनती करि लै आई । चरण धोयकै उर सुख छाई ॥
वही काठ पर डारहिं जाई । विदा करें तेहिं अशन कराई ॥
वर्ष रोज भर किय यह रीती । यक दिन वही राह युतप्रीती ॥

दोहा—श्रीकबीर निकसे तिनहिं, करि दंडवत प्रणाम ॥

घरहिं लाय पग धोय जल, डारयो दारु ललाम ॥ २ ॥

तब वह दारु चहुं दिशि तेरे । आये पीका फूट घेनेरे ॥
हरित विलोकि पूर्व निज हाला । कहि ह्वै गये शिष्य तत्काला ॥
खात भये पुनि सीत प्रसादी । जब गुरु जात भये अहलादी ॥
गये दूरि पहुँचावन हेतू । चलत कह्यो गुरु कृपानिकेतू ॥
कबहुँ सँदेह परै तुम काहीं । तो अइयो जरूर हम पाहीं ॥
तामें प्रियादासको भाषा । एक कवित्त यहो लिखिराखा ॥

कवित्त—तत्त्वाजीवा भाई उभय विप्र साधु सेवापन मन धरी-

बात ताते शिष्य नहिं भयेहैं ॥ गाड़यो एक ढूँठ द्वार होय अहो
हरी डार संत चरणामृतको लेकै डारि नयेहैं । जबहीं हरित -
देखो ताको गुरु करि लेखो आय श्रीकबीर पूजी आश पावल-
येहैं । नीठ नीठ नाम दियो दियो परिचाय धाम काम कोउ हो-
य जोपै आयो कहिगयेहैं ॥ १ ॥

श्रीकबीर जब कियो पयाना । तब तत्वा जीवा अस थाना ॥
चल्यो फिसाद कबीर जुलाहा । खायो ये तोहिं जूठ उछाहा ॥
ताते इनके साथ न खैहैं । खातहिं छोंड़ि जातिके देहैं ॥
द्वै सुत रहे एक जो भाई । एकके द्वै कन्या छविछाई ॥
तिनके काज करै नहिं कोई । ये उपाय कीन्हे बहुतोई ॥
एकौ तिन उपाय नहिं लागे । भे सुत सुता स्यान सुख पागे ॥

दोहा—तब दोउ बंधु विचार किय, कहिगे स्वामिअवास ॥

शंकट परै जो तुमहिं कछु, अइयो हमरे पास ॥ ३ ॥

अस विचारि काशी में जाई । सब हवाल निज गये जनाई ॥
सुनि कबीर यह वचन उचारा । करहु विवाह निजहि आगारा ॥
दुइ कन्या दुइ पुत्र तिहारे । बात नवटी कबहुँ तब प्यारे ॥
तब गृह आय दोउ सुखधारी । काज करनकी करी तयारी ॥
टोला और परोसीवारे । कहां सगाई कियो उचारे ॥
तब इन कह्यो भगिनि औ भाई घरहीमें खोजैं कहैं जाई ॥
ह्याहीं हम करि लेहिं विवाहा । सुनि सब कीन्ह्यो सोच अथाहा ॥
जो यह व्याह कियो घरमाहीं । तो हमरो उपहास सदाहीं ॥
कहिहैं सकल जातिके येहीं । तुम्हरे घर विवाह करि लेहीं ॥
यह गुणि सबै ज्ञातिके आई । पग परि कह अस करहु न भाई ॥
जब ये तिनको कहा न माने । फेरि ज्ञाति जन वचन बखाने ॥
जौन खर्च लगिहै तुव काजै । सो हम तुमहिं देहिगे आजै ॥

दोहा—नहिं परंतु ऐसो करो,है कबीर भगवान ॥

सीत प्रसादी लेहिंगे तिनको हमहुँ सुजान ॥ ४ ॥

ऐसो पक्का इत करि लीने । सकल ज्ञानवारे भय भीने ॥
प्रियादास जो किय निर्माना । सो कवित्त इत करों बखाना ॥
सकल ज्ञातिके जब यहि भांती । नम्र होतभे सहित जमाती ॥

कवित्त—कानाकानी भई द्विज जानी जाति गई पांति न्यारी-
करिदई कोऊ बेटी नहिं लेतुहै । चलयो एक काशी जहँ वसत-
कबीर धीर जाय कही पीर जब पूछ्यो कौन हेतुहै । दोऊ तुम
भाई करौ आपमें सगाई होई भक्ति सरसाई न घटाई चितु चेतु
है । आय वही करी परी ज्ञाति खरभरी कहै कहा उर वरी कछु
मतिहूँ अचेतुहै ॥ १ ॥

तब प्रसन्न ह्वै अति यक भाई । काशी श्रीकबीर ढिग जाई ॥
सादर सब कहिगयो हवाला । स्वामि कह्यो सुनि वचन विशाला ॥
सपदि जाय अब करो विवाहा । लीन्ह्यो यह कबुलाय उछाहा ॥
की हरि भक्ति आजुते करिहैं । कबहुँ कुमारग पावँ न धरिहैं ॥
हम नहिं सुता अभक्तहि काहीं । देहिं वचन सुनि अस गुरु पाहीं ॥
तुरत आपने सदन सिधार्ई । भगवत भक्ति करन कबुलाई ॥
व्याह सुतासुतको करिदीन्ह्यो । परम उछाह गेह निज कीन्ह्यो ॥
सब विमुखनको काशि पठाई । श्रीकबीरके शिष्य कराई ॥
सकल देश हरिभक्त बनायो । तत्त्वा जीवा अति सुख छायो ॥

दोहा—ऐसे दक्षिण देश में,तत्त्वा जीवा दोउ ॥

भये कह्यो तिनकी कथा,है संक्षेपहु सोउ ॥ ५ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेद्वयधकशततमो

अथ श्रीरघुनाथ गोसांईकी कथा ॥

दोहा—श्रीरघुनाथ गोसांईकी, कहौं कथा अभिराम ॥

पूरव रहे गृहस्थ अरु, बड़े धनाढ्य ललाम ॥ १ ॥

सब परिवार छोड़ि धन काहीं । जात भये नीलाचल माहीं ॥
स्वामि सामुहे ठाढ़े भये । बीति दिवश निशि कैऔगये ॥
पंडन जगपति दियो रजाई । देहु बोढाय हमारि रजाई ॥
कीरति बड़ी पुरी असि छाई । भो संग्रहणी रोग महाई ॥
तब जस माधौदासहि केरो । सेवा किय जगनाथ वनेरो ॥
तैसहि स्वामि आपने हाथा । सेवा कियो दास रघुनाथा ॥
पुरी महा प्रभु यक अभिरामा । रहे कृष्णचैतन्यहि नामा ॥
बहुत दिवश निवसे तिन पासा । लहि निदेश तिन पुनि सहलासा ॥
सादर श्रीवृंदावन आई । राधाकुंड बसे सुखछाई ॥
तहँ बहु परिचै सबको दीन्ह्यो । नहिं वर्णन विस्तर भय कीन्ह्यो ॥
यक परिचै मैं देहु सुनाई । जानिलेहु ऐसहि सुखदाई ॥
एक समय रघुनाथ गोसांई । ह्वै विराम किय व्रत तेहि ठाई ॥

दोहा—मंदिरकेर महंत तहँ, वैद्यहिं लियो बोलाय ॥

सो लखि नाड़ी कह कियो, इन निशि अशन बनाय २ ॥
सुनि महंत कह झूठ न कहहु । तुम सतवैद्य विदित जग अहहु ॥
इनको भोजन कोउ न दीन्ह्यो । ये असक्त भोजन कस कीन्ह्यो ॥
वैद्य कह्यो न वैद्य हम ऐसे । वचन हमार अन्यथा कैसे ॥
देहिं बताय खीर इन खायो । चिनी डारिकै राति बनायो ॥
पूछिलेहु सो शपथ धराई । यहि रोगीसों अबहीं जाई ॥
सुनि महंत चलि तिनके पासा । कह्यो सत्य तुम करहु प्रकाशा ॥
वैद्यराज मिथ्या यह कहहीं । तुमहिं उपास सत्रहै अहहीं ॥
देहै कौन खीर तुम काहीं । कह्यो गोसांई वचन तहांहीं ॥

वैद्य सत्य कहतेहैं बाता । भूख लगी तुमसों अधराता ॥
मांगत भये न जब तुम दीन्ह्यो।हमसों अस उचार मुख कीन्ह्यो॥
भोर वैद्यको हाथ देखाई । देहैं भोजन तुमहिं देवाई ॥
शौचिक्रिया मानस तब ठानी । चाउर दूध कतहुँते आनी ॥

दोहा-अग्नि बारिकै खीर करि, सुंदरि चिनी मिलाय ॥

थार परसि श्रीकृष्णको, दीन्ह्यो भोग लगाय ॥ ३ ॥

खायगये सो खीर सब, आवति अबहुँ डकार ॥

सुनत मानि अचरज गहे, संत चरण सुखसार ॥ ४ ॥

वैद्यराज को देतभे, तुरत मैगाय इनाम ॥

बहु रघुनाथ गुसांइके, चरित कह्यो कछु आम ॥ ५ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यंकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

अथ नित्यानंदकी कथा ॥

दोहा-नित्यानंद सुसंतको, वरणों बर इतिहास ॥

रहैं बंधु द्वै जेठभे, नित्यानंद प्रकाश ॥ १ ॥

अनुज कृष्णचैतन्यहि नामा । गौड़ देश प्रगटे अभिरामा ॥

श्रीबलदेव केर अवतारा । नित्यानंद भक्ति आगारा ॥

जगमें करिकै भक्ति प्रचारा । मत पाखंड खोय सब डारा ॥

आगे मत्त वारुणी माहीं । रहे विदित बलदेव सदाहीं ॥

तिनको अंतर प्रेम अपारा । तब नहिं प्रगट रह्यो संसारा ॥

ताते नित्यानंद स्वरूपा । धरि प्रगटतभे प्रेम अनूपा ॥

नयननिते आँसुनकी धारा । बहै निरंतर सबै निहारा ॥

जान्यो उर समात सो नाहीं । तब चलि ठौर ठौर चहुँवाहीं ॥

बहु शिष्यनको करि उपदेशा । दिय विरताय प्रेमसो वेशा ॥

पूरण प्रेम लक्षणा तेरे । हूँगे तिनके शिष्य घनेरे ॥
इनके अहैं बहुत इतिहासा । विस्तर भीति न कियो प्रकाशा ॥
लेहि प्रभाव सकल तिन जानी । इतनेहीमें संत विज्ञानी ॥

दोहा-नित्यानंद सुसंतकी, कही कथा सुखदानि ॥

सुनि सुनि संत सुजान सब, लहिहैं आनंद खानि ॥२॥

इति श्रीरामरसिकावल्यंकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे

चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

अथ कृष्णचैतन्यकी कथा ॥

कवित्त-महाप्रभु कृष्णचैतन्य भये गौड़ देश, नदिया शहर
कथा करौं मैं उचारहै ॥ पार करिवेको या अपार भव पारावार
संत सुखसार जासु कृष्ण अवतारहै ॥ अनुराग गोपिनके हारि
गये द्वापर मे, गौर अंग गोपी उर कियो जो विहार है ॥ श्याम
रंग ताकि मनु श्याम भये गोर अंग शचीपुत्र भक्ति कीन्ह्यो
कलि परचारहै ॥ १ ॥

दोहा-गोपिन लाल शरीरमें, मनु श्यामता गमाय ॥

इतै कृष्णचैतन्य प्रभु, गोर रहे छविछाय ॥ १ ॥

सोरठा-तिनके चरित अनंत, विस्तर भय वरण्यों न इत ॥

सति जानैं सब संत, लिखों कवित प्रियादास कृत १ ॥

कवित्त-आवै कभूं प्रेम हेम पिंडवत तनु होत, कभूं संधि
संधि छूटि अंग बढ़ि जात है ॥ और एक न्यारी तिमि आसु
पिचकारी मानो, उभय लाल प्यारी भाव सागर समात है ॥ ईशता
बखान कहा करौं यों प्रमाण याको, जगन्नाथ क्षेत्र नेत्र लिखि
साक्षात हैं ॥ चतुर्भुज षट्भुज रूपलै दिखाय दियो दियोजू अनूप
हित ख्यात पात पात हैं ॥ १ ॥ कृष्णचैतन्य नाम जगतमें

प्रगट भयो अति अभिराम लै महंत देही करी है ॥ जितो गोड़
देश भक्ति लेशहू न जानै कोऊ सोऊ प्रेमसागरमें बोच्यो कहि
हरी है ॥ भये शिरमोर जग एक एक तारिवेको धारिवेको कौन
साखि पोथिनमें धरी है ॥ कोटि कोटि अजामेल वारि डारे
दुष्टतापै, ऐसेहू मगन कियो भक्ति भूमि भरी है ॥ २ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेपंचाधिक
शततमोऽध्यायः ॥ १०५॥

अथ सूरदासकी कथा ॥

दोहा—सूरदासजी जग विदित, श्रीउद्धव अवतार ।

कथा पुराणांतर कथित, वर्णन करों उदार ॥ १ ॥

जब मथुरामें श्रीनंदलाला । गोपिनको विज्ञान विशाला ॥
सादर करन हेतु उपदेशू । पठयो उद्धव गोकुल देशू ॥
तहँ गोपिन पर प्रेम परेषी । उद्धव बोले ज्ञान विशेषी ॥
धारि भक्ति हरिनिजउरमाहीं । आवत भे पुर मथुराकाहीं ॥
राखि भाव उर गोपिन केरो । लख्यो संग हरिचरित घनेरो ॥
तब उद्धवको श्रीयदुराया । बदरीनाथ काहँ पठवाया ॥
यह सुवासना उद्धवके तब । रही आय ब्रज एक बार कब ॥
गोपिनको अनूप अनुरागा । हरि लीला जो ब्रज सब जागा ॥
सो रसनाते वर्णन करहूँ । वरसंतोष हिये पर धरहूँ ॥
कीन्हें यही वासना काहीं । उद्धव प्रगट भये कलिमाहीं ॥
सूरदासते संत शिरोमणि । विचै सवालाख पदको गुणि ॥
करि संकल्प मुदित मनशामें । हरिलीला विभूतिहूतामें ॥

दोहा—वरण्यों तिभि गोपीनको, जो यथार्थ अनुराग ।

विरचि कृष्णपद सूरवदि, सहस पचीस अदाग ॥२॥

पूरण कीन्ह्यो सूर प्रण, सूरश्याम जहँ होय ।
 सो पद विरच्यो कृष्णही, जानि लेहु सब कोय ॥३॥
 महाघोर कलिकाल महँ, जन्म लेब दुखदूर ।
 दृग विकार गुणि याहिते, सूरदासभे सूर ॥ ४ ॥

जन्महि ते हैं नयन विहीना । दिव्यदृष्टि देखहिं सुखभीना ॥
 लीनि परीक्षा सो तेहिं नारी । एक समय अस वचन उचारी ॥
 पिय मोहिं सकल ग्रामकी वामा । मोसों कहहिं वचन असि वामा ॥
 तू केहि देखन करहि शृंगारा । तेरो पाति तो अंध अपारा ॥
 सुनिकै सूर कही यह वानी । आजु शृंगार भली विधि ठानी ॥
 बहु स्त्रिनको लै निज संग । बैठहु आय इहां सउमंगा ॥
 भूषण तुव विगरो जो होई । देहैं हम बताय सत सोई ॥
 सुनि यह सूरदासकी नारी । सब भूषण निज अंग सँवारी ॥
 बेंदी देत भई नहिं भाला । सूर बोलायो ठिग तब वाला ॥
 तिय भूषण सब अंग निहारी । सूरदास बोल्यो सुखधारी ॥
 बेंदी भाल दियो क्यों नाहीं । लखि प्रभाव यह सूर तहांहीं ॥
 कीन्हे सकल लोग जय शोरा । ख्यात बात भइ जग सब ठोरा ॥

दोहा—ह्वै विरक्त संसारते, दिव्यदृष्टि हरि ध्यान ॥

सूरदास करते, रहे, निशिदित विदिन जहान ॥ ५ ॥

सूरदास इतिहास बहु, परचै अहै अनेक ॥

जानिलेहु सब संतजन, कहौं नेक सविवेक ॥ ६ ॥

कवित्त—कविकुल कोक कंज पाइकै किरिणि काव्य विकसे
 विनोदित ह्वै नेरे और दूरके ॥ सूखिगो अज्ञान पंक मंद भोमयंक
 मोह विषय विकार अंधकार मिटे कूरके ॥ हरिकी विमुखताई र-
 जनी पराय गई, मूक भये कुकवि उलूक रस झूकके ॥ छायोते-
 रघुराज रूर हरि जन जीव मूर सूर उदै होत सूरके ॥

मातिराम भूषण विहारी नीलकंठ गंगवेणी शम्भु तोष चिंतामणी
कालीदासकी ॥ ठाकुर नेवाज सैनापति शुकदेव देव, पजन घन
आनंद अरु घन श्यामदासकी ॥ सुंदर मुरारि बोधा श्रीपतिहूं
दयानिधि युगल कविंद, त्यों गोविंद केशव दासकी ॥ भनै रघुराज
और कविन अनूठी उक्ति मोहिलगी जूठीजानि जूठी सूरदास-
की ॥ २ ॥ अखिल अनूठी उक्ति युक्ति नहिं झूठीनेकु, सुधाहूँते सरस
सरस को सुनावतो ॥ उद्धृत विराग भागसहित अनेक राग, हरिको
अदाग अनुरागको सिखावतो ॥ जगत उजागर अमल पद आ-
गर सु नटनागर ध्याय सूरसागर को गावतो ॥ भाषै रघुराज रा-
धा माधवको रासरस कौन प्रगटावतो जो सूर नहिं आवतो ॥ ३ ॥
शाह सुन्यो सुरनसे वेगही बुलायो दिल्ली पूँछ्यो कौनहो तू सूर
कह्यो पूँछ्यो बेटीसों ॥ शाह कह्यो जानौ कैसे सूर कह्यो जंचति-
ल शाह पूँछवायो सो तुरत यक चेटीसों ॥ कन्या कह्यो कहततु-
रंतही शरीर छूटी हठ परे कहि तनु तजि हरि भेंटीसो ॥ भनै
रघुराज शाह सूर पद शिरनाय पूँछि हरि रास रीति भव भीति
मेटीसों ॥ गोकुलमें रास होत राधाजूने मानकीन्ह्यो हरिमानमोरिवे
को उद्धवै पठायो है ॥ जानि गुरुमान कह्यो नेसुक कटुक बैन
दीनी वृषभानुसुता शाप कोपछायो है ॥ धारिये मनुज तनु
तारिये जगतजाय सकल सुनाइये जो राम रस भायो है ॥ भनै
रघुराज सोई ऊधो अवनीमें आय रसिक शिरोमणि सो सूर क-
हवायो है ॥ ५ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्ल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे

षडुत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

अथ परमानंदकी कथा ॥

दोहा—परमानंद भये पुहुमि, परमसंत विख्यात ॥

पावै परमअनंद उर, देखि साधु अवदात ॥ १ ॥

भगवत धर्म विहायकै, कियो धर्म नहिं और ॥
 रख्यो निरंतर नाम हरि, रसना बसि यक ठौर ॥ २ ॥
 श्रवण करत भगवत कथा, बहै आंसुकी धार ।
 भक्ति जे नवधा भक्तिहैं, तिनके रसिक अपार ॥ ३ ॥
 तनु त्यागनके समय में, श्रीवृंदावन जाय ॥
 कालिंदी ध्रुव घाटमें, दीन्ह्यो काय विहाय ॥ ४ ॥
 इनकी बहु परचै कथा, जानें जन सहुलास ॥
 विस्तर भयते नहिं कियो, तिनको यहां प्रकाश ॥ ५ ॥
 इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे
 सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

अथ श्रीभट्टकी कथा ॥

दोहा—कहों कथा श्रीभट्टकी, वृंदावन करि वास ॥
 राधा कृष्ण उपासना, कीन्ही परमहुलास ॥ १ ॥
 मधुरभावअति लखिहरिलीला । रहै प्रसन्न सदा शुभ शीला ॥
 जिनके दृगते आँसुन धारा । बहै प्रेम परिपूर्ण अपारा ॥
 भवसागर उतरन कहँ सोई । सरिस जहाज भक्ति हरि सोई ॥
 करहिं सदा सबको उपदेशा । सदावर्त्त सम मानि हमेशा ॥
 रविशशि जेहिं उपदेशप्रकाशा । भ्रम तम तुरत हरै अनयासा ॥
 कृष्ण राधिका भजनहिं माहीं । जाहिं रैन दिन जिन्हें सदाहीं ॥
 एक समय श्रीभट्ट सुसन्ता । ब्रज कुंजनगे कहि मुदवन्ता ॥
 आज दरशकरि लाला केरो । और प्रियाको मोद घनेरो ॥
 दरशन करि विशेष गृह ऐहों । तब सबको निज वदन देखैहों ॥
 हेरत हेरत थाकि गये तहँ । श्रीहरिदास निवास कियो जहँ ॥
 ऐसे निधि वनमें जब आये । कृष्ण राधिका को तहँ पाये ॥

विठ्ठलदास और इनके सात पुत्रोंकी कथा । ९०९

तहँ कवित्त इक शुभग बनायो । परम प्रमोद हिये महुँ छायो॥
दोहा—सो कवित्त इत लिखतहौं, सुनहिं संत मतिवान ॥
जानिलेहिं श्रीभट्टमें, ऐसो भाव अमान ॥२॥

कवित्त—ब्रह्ममें ढूँढ़ि पुराणन वेदमें वेदकृचा पढ़िचौगुने
चायन ॥ जान्यो नहीं न कहा कबहुँ यह कौन स्वरूपहै कौन
सुभायन ॥ हेरत हेरत हारि परचोहौं बतायो नहीं कोउ लोग
लोगायन ॥ देखो कहाँ दुरचो कुंजकुटीरमें बैठो पलोटत
राधिकापायन ॥ १ ॥

दोहा—श्रीवृंदावन कुंजमे, युगल चरणरस मग्न ॥
श्रीभट्ट महिमा वरणि कवि, होत मोद संलग्न ॥ ३ ॥
इति श्रीरामरसिकावल्यंकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे
अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

अथ विठ्ठलदास और इनके सात पुत्रोंकी कथा ॥

दोहा—पुत्र बल्लभाचार्यके, प्रगटे वीठलदास ॥
तासु सात सुत भे करों, तिनको नाम प्रकाश ॥ १ ॥
गिरिधर अरु गोविंदजू दूजे । तीजे बालकृष्ण जन पूजे ॥
चौथ रहे जस वीर नाम जेहि । पंचम गोकुलनाथ नाम तेहि ॥
छठौ नाम रघुनाथहि जानौ । सातों श्रीघनश्याम बखानौ ॥
सातहु करि हरि भक्ति अपारा । दै उपदेश जनन संसारा ॥
दिय पठाय श्रीपतिके धामा । ब्रज माधूर्यभाव अभिरामा ॥
सातों भये तासु अधिकारी । कवि ह्वै वरणें हरियश भारी ॥
रसनाते नर कविता काहीं । कैसेहु कबहुँ भाषै नाहीं ॥
एक समय एक भूप महाना । कह्यो करहु मम सुयशबखाना ॥
जो मम यश नहिं वर्णन करिहौ । तौ विशेषियमलोक सिधरिहौ ॥

सुनि कबूल करिकै गृह आई । निज रसना काखो अतुराई ॥
 सो हवाल नृप सुन्यो सवेरे । चरणन आय परचो तिनकेरे ॥
 निज अपराध क्षमा करवाई । अपने अयन गयो नरराई ॥

दोहा—पुनि वृंदावन आयकै, करिकै अचल निवास ॥

अंत समय गोलोक गे, सातहु सहित हुलास ॥ २ ॥

इनके चरित अनेक हैं, जानत संत सुजान ॥

विस्तर भय संक्षेपते, इतमें कियो बखान ॥ ३ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे

नवोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

अथ कृष्णदासकी कथा ॥

दोहा—शिष्य वल्लभाचार्यके, कृष्णदास अवदात ॥

अधिकारी भे भजनके, गुरुकी कृपा विख्यात ॥ १ ॥

तिनकी कथा करों मैं गाना । धारि हिये में प्रीति महाना ॥

करैं नाथजी की सेवकाई । भये प्रसिद्ध जगत कविराई ॥

जामे दूषण परै न हेरी । ऐसी कविता करैं निवेरी ॥

सर्वस मानै ब्रजरज काहीं । नाथ कृपाके पात्र सदाहीं ॥

इक दिन दिल्ली चले बजारा । तहां जलेबी शुभग निहारा ॥

योग्य नाथजीके तेहि जानी । खरे बजारहिमें सुख मानी ॥

दियो नाथकहँ भोग लगाई । लह्यो तहैंते श्रीयदुराई ॥

वृंदावनमें होत प्रभाता । भोग धरचो पंडा अवदाता ॥

भोग न लग्यो नाथको जबहीं । पंडा विनय करतभो तबहीं ॥

भई प्रगट हरिकी तब वानी । पंडा लेहु सत्य यह जानी ॥

कृष्णदासने बीचबजारा । अरप्यो मोहिं जलेबि अपारा ॥

भयो अजीरण सोको सोई । ऐसो जानिलेहु सब कोई ॥

दोहा—रूयात भई यह बात पुनि, बड़ी प्रीति लखि गान ॥

द्वै गणिका अति सुंदरी, कहूँ गावैं रतिवान ॥ २ ॥

तिनको ऐसे वचन सुनाई । मेरे लालाके ठिग जाई ॥
गान आपनी देहु सुनाई । अस कहि जगकी लाज विहाई ॥
लाये गृह लेवाय निज साथ । मज्जन करवायो सुख गाथा ॥
पट नवीन सादर पहिराई । अतर आपने पाणि लगाई ॥
पुनि मंदिर श्रीनाथहिं केरे । लै आये भरि मोद घनेरे ॥
तहँते गणिका नृत्यहु गाना । कियो अपूरव छकित महाना ॥
तदाकार है हरि छवि करि मन । त्यागिदियो अपनो अपनो तन ॥
कियो नाथ जो अंगीकारा । लिखेदेत प्रियदास उचारा ॥

कवित्त—नीके अन्हवाय पट आभरण पहिराय, सोधोहू लगा-
य हरिमंदिरमें लाये हैं ॥ देखि भई मतवारी कीन्ही लै अलाप
चारी, कह्यो लाल देखे बोली देखे मही भाये हैं ॥ नृत्यगान तान भा-
व भरि मुसकानि दृग, रूप लपटान नाथ निपट रिझाये हैं ॥ हैकै
तदाकार तनु छूट्यो अंगीकार करि, धरि उर प्रीति मन सबके
भिजाये हैं ॥ १ ॥

इक दिन सूरदास जब आये । कृष्णदास निज भजन सुनाये ॥
सूरदास तब वचन बखाना । ऐसो करहु अनूपम गाना ॥
जामें मेरे पदकी छाया । परै न ऐसो करहु उपाया ॥
कृष्णदास जोइ भजन बनाई । गावैंते खूटैं नित जाई ॥

दोहा—मेरी पद छाया परै, याहूमें सुनु संत ॥

बचे न कौनहु हरि चरित, विरच्यो सूर अनंत ॥

सूरदास जब फेरि सिधाये । तबते नयो भजन यक गाये ॥
सूरदास तब कह्यो तहांहीं । यामें मम पद छाया नाहीं ॥

परंतु नहि आप बनायो । कृष्णदास तब वचन सुनायो ॥
 यह पद मेरे कागज माहीं । लिख्यो कृष्णनिर्मितममनाहीं ॥
 सूरदास तब धन्य धन्य कहि । कियो दंडवत परम मोदलहि ॥
 नाथ कृपा कीन्ही यहि भांती । सो कविसों नहि वरणि सिराती ॥
 इक दिन हरिभक्तनको प्यासा । लगी लेन जल गये हुलासा ॥
 पावैं छुट्यो गिरिपरे कूप पर । छूटिजातिभो तब तिनको घर ॥
 बड़ी शंकभै संत समाजा । संत लह्यो अपमृत्यु दराजा ॥
 शंका तौन निवारण हेतू । करिकै कृपा नाथ सुखसेतू ॥
 जादिन कृष्णदास तनु त्यागा । तादिन नाथ सहित अनुरागा ॥
 परिक्रमा गोवर्द्धन पाहीं । चले जात तिनके संग माहीं ॥

दोहा—गाय चरावत जो रह्यो, मंदिरकी नित ग्वाल ॥

भेंट भई तिनकी तहां, पूँछ्यो सो तत्काल ॥

महाराज कहैं आजु सिधारो । कृष्णदास तब वचन उचारो ॥
 श्रीबलदेव जातहैं आगे । तिनके साथ जाहु सुख पागे ॥
 तुम मंदिरहि नाथके जाई । निवसत तहां हमेश गोसाँई ॥
 तिनसों मम दंडवत प्रणामा । कहियो और हवाल ललामा ॥
 द्रव्य गड़ी मंदिर यक जागा । देहुँ बताय तोहि युत रागा ॥
 सो गोसाँईसो तू कहि दीजो । कृष्णदास अस कहि सुखभीजो ॥
 पर विभूतिको कियो पयाना । करत कृष्णगुण यशमुखगाना ॥
 मंदिर माहि आयसो ग्वाला । सादर सब कहि गयो हवाला ॥
 जहाँ द्रव्य तहैं चलि सब संता । द्रव्य देखि अतिभे मुदवंता ॥
 कीन्ह्यो निज मन माहैं प्रतीती । तिन्हें न मृत्यु अकालहि भीती ॥
 यहि विधि नाथ सबहिंदरशायो । कृष्णदास कहैं निकट बसायो ॥
 ऐसे श्रीवृंदावन माहीं । कृष्णदास भे विदित सदाहीं ॥

दोहा—तिनके चरित अनंत हैं, कहि न लह्यो कोउ पार ॥

मैं वरण्यो संक्षेपते, सुनत गुणत सुखसार ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे दशो

त्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

अथ माथुर विठ्ठलदासकी कथा ॥

दोहा—रह्यो मथुरिया एक द्विज, विठ्ठलदासहि नाम ॥

आप आपनी मानप्रद, सब संतन सुखधाम ॥ १ ॥

तासु कथा वरणों जेहिं रीती । तिलकदास सों किय अति प्रीती ॥
भगवत सम्बन्धी गुण धारण । कियो जन्मभरि नाम उचारण ॥
भगवत भक्तनकी बड़वारी । कहि प्रसिद्ध भे पर उपकारी ॥
हरि उत्सवमें किय सुत दाना । भाई उभय पुरोहित राना ॥
आपुसमें लरि दूनों भाई । देत भये निज देह विहाई ॥
तासु तनय भो विठ्ठलदासा । नृत्य गान में सुवर प्रकाशा ॥
प्रेमाभक्ति प्रधान अनूपा । ताके निकट एक वरभूषा ॥
अस कहि यक जनको पठवायो । बीठलदास संत जो भायो ॥
मेरे ढिग लेआवहु ताको । प्रेम विलोकहुँ मैंहुँ वाको ॥
कोउ कह नृत्य करत हरि आगे । प्रेमते गिरन लगत सुखपागे ॥
जो कोऊ पकरत है नार्ही । तो महिमें गिरि परत तहांहीं ॥
राना सुनि यह त्रयछत ऊपर । बैठत भयो आय कह यक नर ॥

दोहा—आयो बीठलदास पुनि, नृप लिय तिनहि बोलाय ॥

नृत्य गान करने लगे, ते तहँ हरि बैठाय ॥ २ ॥

कृष्णदासके प्रेम बढ्यो जब । गिरन लग्यो विमुखीन धर्यो तब ॥
गिरिकै ऊपरते महि माहीं । परत भये रहिगे सुधि नार्हीं ॥
राना वदन श्वेत है गयऊ । दुष्टनको गारी बहु दयऊ ॥

कृष्णदास बीते दिन तीनी । तनक तनक तनुमें सुधि कीनी॥
 राजा तिनके सेवा हेतू । पठवत भयो मनुष्य सचेतू ॥
 बहु धन पूजा हेतु पठायो । निज अवगुणि बहुविधि दुख पायो॥
 जननी सुख यह सकल हवाला । कृष्णदास सुनि अतिहि उताला॥
 तजि वह गावँ छटिकरा नामा । रह्यो ग्राम तहँ चलि किय धामा॥
 मातु तियहु तेहिं सो सुधि पाई । तहां निवास करत भे जाई ॥
 सेवा भजन करै हरिकेरी । पीड़ा लहै शरीर घनेरी ॥
 दिय भगवान स्वप्न त्रय बारा । जाहु मधुपुरी विनहिं विचारा॥
 तब मथुरा चलि तजि सब जाती । वसे गेह बढई सुखमाती ॥
 दोहा—गर्भवती अति पतिव्रता, रही तासु जो नारि ।

यक दिन माटी खोदते, भांडा नयन निहारि ॥ ३ ॥
 बढई सों सो वचन बखानी । तेरी द्रव्य लेहि सुखमानी ॥
 सुनि बढई कह है मम नाहीं । लेहु तुमहिं दिय हरि तुमकाहीं॥
 तब प्रसन्न अति बीठलदासा । सकल द्रव्य लै आय अवासा॥
 करन लगे संतनको सेवन । हरिके राग भोगमें बहु धन ॥
 खर्चि नृत्य अरु गान सुहायो । हरिके आगे बहु करवायो ॥
 भक्ति रीति बहु जग फैलाई । भये शिष्य ते जन समुदाई ॥
 यक दिन गान तान परवीनी । एक नटी उत्सव सुख भीनी ॥
 ऐसो करत भई सो गाना । बीठलदास परमसुख माना ॥
 देत देत सब द्रव्यहि दीन्ह्यो । विविध भांति सन्मानहि कीन्ह्यो॥
 रंगिराय नाम सुतकाहीं । रीझि नटीको दियो तहांहीं ॥
 रंगिराय शिष्य यक रहई । राना सुता सुनत भै तहँई ॥
 दीन्ह्यो नटी हमारे गुरु कहँ । भयो कुनाम बड़ो यह जगमहँ॥

दोहा—अस विचारि रानासुता, कहि पठयो नटि पाहिं ॥

द्रव्य कहै सो देहुँ मैं, देहि गुरू मोहिकाहिं ॥ ४ ॥

नटी कह्यो मैं द्रव्य न चाहौं । जस रिझायलिय तुव गुरुकाहौं ॥
 ऐसहि नृत्य गानमें कोई । लेहिरिझाय मोहिं जन जोई ॥
 ताको तुव गुरु देहुं विशाला । भूपसुता यह सुन्यो हवाला ॥
 अमित गायकन नृत्यक जोरी । पठै नटीपै प्रीति अथोरी ॥
 नृत्य गान बहुविधि करवायो । नटी काहँ बहुभांति रिझायो ॥
 रीझि नटी पालकी चढ़ाई । रंगीराय काहँ लै आई ॥
 रानासुता काहँ दै दीनो । रंगीराय कह्यो सुख भीनो ॥
 सुनहि वयन मम राजकुमारी । मम पितु रीझिगयो है भारी ॥
 तबमोहिं मोहरन वदि न्यवछावरि । कीन्ह्यो ताते मोहिंन लेहिं अरि
 गुरुको वचन लेहि यह मानी । ऐसो रंगीराय बखानी ॥
 गमनत भये नटीके संगै । गुरु वियोग तब जानि अभंगै ॥
 रानासुता शरीर विहाई । हरिके लोक गई सुख छाई ॥

दोहा—ऐसे चरित विचित्र हैं, भगवत रसिक अपार ॥

बीठलदासहु रामके, करि उत्सव संसार ॥ ५ ॥

देत देत धन तोष कछु, लह्यो न निज मन माह ॥

तब अपनो सुत प्यारहुं, दै राख्यो सउछाह ॥ ६ ॥

इति श्रीरामरसिकावलयांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेएकादशाधिक

शततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

अथ संतहरिनामकी कथा ॥

दोहा—कथा संत हरिनामकी, कहत अहौं अभिराम ॥

गन्यो न रानहु को जो कछु, भजन प्रभाव मुदाम ॥ १ ॥

यक संन्यासीके सँग माहीं । राजा खेलै चौपरिकाहीं ॥

सो आपनो सकोच जनाई । एक साधु जीविका मिटाई ॥

तब वह संत महादुख छायो । रानाको फिर आय सुनायो ॥

सुनि राना दीन्ह्यो झिझिकारी । ताकी बात कान नहिं धारी ॥
 हैकरि तब वह संत उदासा । जाय कह्यो हरि रामहिं पासा ॥
 महाराज मम गावैं जो रहेऊ । कह संन्यासी राना लयऊ ॥
 करों संत सेवा कस नाथा । सुनतै चले संतके साथी ॥
 सपदि सभा रानाके जाई । खड़े भये राना सुखपाई ॥
 हरिरामहि सादर बैठायो । तबते बहु उपदेश सुनायो ॥
 पै राना कबूल किय नाहीं । गावैं देन तेहि संतहि काहीं ॥
 तब हरिराम कह्यो इतिहासा । हिरण्यकशिपु प्रह्लादको खासा ॥

दोहा—तबहुँ न समुझ्यो मूढ़ सो, तब अति रोषहि छाय ॥

देह कैपत फरकत अधर, बोलन चह्यो तुराय ॥ २ ॥

ताही क्षण राजा महल, सिंगरे डोलन लाग ॥

तरे महल रानहु तहां, लाग्यो गिरन अभाग ॥ ३ ॥

तासु कृपा बचि उठि सपदि, विनय कियो गहि पाय ॥

करि बहाल दीन्ह्यो तुरत, संत गावैं हरषाय ॥ ४ ॥

प्रेम पुंज अति तेज युत, ऐसे श्रीहरिराम ॥

दास भये तिनकी कथा, कह्यो समास ललाम ॥ ५ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे द्वादशाधिक

शततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

अथ कमलाकरभट्टकी कथा ॥

सोरठा—कमलाकरभे भट्ट, पंडित पुढुमि अखंडितै ॥

आचारी उदभट्ट, आय जिन्हें आदर कियो ॥ १ ॥

संप्रदाय निज छत्र, मध्वाचारज द्वितिय मनु ॥

हरि अवतार चरित्र, गान कियो निज वदन सों ॥ २ ॥

श्रीभागवतहि रीति, चले धारिकै भुजनपै ॥

मुद्रा तप्त सप्रीति, लियो निरंतर नाम हरि ॥ ३ ॥
 अंत समय हरिधाम, तनु विहाय गमनत भयो ॥
 कह्यो कथा अभिराम, संक्षेपहु जग विदित बहु ॥४॥
 इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे त्रयोदशाधिक
 शततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

अथ नारायणदासकी कथा ॥

कवित्त—नारायणदास भये भागवत वक्ता अति, प्रेम पूरे
 शास्त्रनको सार नीके जान्यो है ॥ सुरगुरु शुक्र व्यास नारद औ
 सनकादि रीतिको ग्रहण करि भूरि यश तान्यो है ॥ मथुरा पुरी
 में बसि हरिद्वार गये फेरि, आज्ञा हरि बद्रिकाश्रमैमें मोद मान्यो
 है ॥ तहां शुकदेवको दरश पाय काशी आय, छोंड़ि तनु श्री
 पतिके धाम वास ठान्यो है ॥ १ ॥

सोरठा—तिनकी कथा अपार, पुहुमीमें संतन विदित ॥
 मैं कछु कियो उचार, विस्तर भय यहि ग्रंथमें ॥१॥
 इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे चतुर्दशो
 त्रशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

अथ रूपसनातनकी कथा ॥

दोहा—गौड़देशवासी अहै, बंगाली सरनाम ॥
 रूप सनातननाम तिन, कहौ कथा अभिराम ॥ १ ॥
 रहे शाहके बड़ अधिकारी । रह्यो ऐश्वरज तिनको भारी ॥
 सो सुखसरिस उवांतहि मानी । तज्यो लिखौ नाभाकृतवानी ॥
 उक्तंच नाभायां ॥

गौड़देश बंगालहु ते सबहीं अधिकारी ॥
 हय गय भवन भँडार विभव भूपति अनुहारी ॥

यह सुख अनित विचारि वास वृंदावन कीन्ह्यो ॥

यथा लाभ संतोष कुंज करवा मन दीन्ह्यो ॥ इति ॥

संत कृष्णचैतन्यहि केरो । लहि उपदेश मानि मुद ठेरो ॥
 रूप सनातन दोनो भाई । गृह तजि श्रीवृंदावन जाई ॥
 जीवगोसाई साधु महाना । तिनसों तहँ किय संग सुजाना ॥
 गोप्य तीर्थ वृंदावनके पुनि । प्रगट किये भाषे जिमि शुक मुनि
 षट्संदर्भ भागवत माहीं । करतभये बुध वदत सदाहीं ॥
 प्रेम लक्षणाके रस रूपा । रहे परम भागवत अनूपा ॥
 कथा श्रवण दृग आंसुन धारा । बहै निरंतर परै निहारा ॥
 कियो सनातन यक दिन मन असा । आजु खीरको भोग लगै कसा ॥
 तब निज दासकेरि रुचि जानी । श्रीराधिका मोद उर मानी ॥
 धरिकै एक ग्वालनी रूपा । पय तंदुल कर लिये अनूपा ॥

दोहा—आय सनातनको दियो, तेनव खीर बनाय ॥

परसादी पावत भये, हरिको भोग लगाय ॥ २ ॥

कह्यो रूप तब सुनिये भाई । खीर साजु कहँवां तुम पाई ॥
 सुनि सब कह्यो हवाल सनातन । चले रूप नयन न आँसुवा चन ॥
 रूप वचन पुनि कह्यो सराही । ऐसो स्वाद लियो नाहिं चाही ॥
 जामें प्रियाकाहँ श्रम परई । आपुहि निकट भक्त पगु धरई ॥
 यक दिन श्रीभागवत पुराना । होत रहै किय रूप पयाना ॥
 निराखि साधु यक तिनको धाई । लीन्ह्यो निज समीप बैठाई ॥
 भँवरगीत गोपिन की नीकी । विरह कथा होती प्रिय जीकी ॥
 सुनिसुनि सब दृग आँसुन धारा । बहत रही तेहिं सभा मँझारा ॥
 तहां रूप दृग आँसुन देखी । कहे सबै अचरज मन लेखी ॥
 प्रेमिनमें ये मुख्य सुहाये । कहा भयो नाहिं आँसु बहाये ॥
 ! करणपूर तहँ एक गोसाई । उठिकै तिनके मुखके ठाई ॥

नासामें निज हाथ लगायो । आग जरो सो फोरा पायो ॥

दोहा—कर्णपूर तब सभामें, देखरायो निज पानि ॥

जरे गात इन सुनि विरह, गोपिन लीजै जानि ॥ ३ ॥

विरह अग्नि इन प्रगट देखायो । ताहीते फोरा है आयो ॥
 श्रीगोविंद चंद्र भगवाना । स्वप्न माहिं यक दिवश वखाना ॥
 मैं गाइनके खरकन माहीं । रहत अहाँ महि गड़ो सदाहीं ॥
 भोग लगाय पय धारहि तेरे । पूजहु म्वाहिं निकासि चलि नरे ॥
 तहँ चलि भूमि खनाय निकासी । पूजन लगे मूर्ति सौ खासी ॥
 एक साहुकी नाव विशाला । यमुनामें अटकायो हाला ॥
 हरि मंदिर बनवावन काहीं । किय कबूल तब छुटी तहाहीं ॥
 साहु तुरत मंदिर बनवायो । तहँ गोविंद चंद्र पधरायो ॥
 राग भोग हित सों धन भूरी । दियो लगाय मोद सों पूरी ॥
 यक दिन यक पदरच्यो सनातन । कियो राधिका वेणी वर्णन ॥
 उपमा तासु नागनी केरी । दियो कल्यो सुनि रूप निवेरी ॥
 भाई प्रिया पीठि पर नागिन । कहिबो नहीं बनत है यहि छिन ॥

दोहा—ऐसो कहि कुंजन गये, तहँ कदंबकी डार ॥

झूला झूलत प्रियाकी, निरख्यो सुछवि अपार ॥ ४ ॥

नागिनसी वेणी छुटी, लख्यो राधिका पीठि ॥

पद परि कह पद भल रच्यो, अग्रजसो द्रुत हीठि ॥ ५ ॥

रूप सनातनके अहैं, ऐसे चरित अनंत ॥

मैंवण्यो संक्षेपते, श्रवणकरैं सब संत ॥ ६ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धपंचदशा

धिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

अथ जीवगोसांईकी कथा ॥

दोहा—रूप सनातन शिष्यभे, जीव गोसांई संत ॥

परम उपासक प्रथित जग, राधा राधाकंत ॥ १ ॥

तिनकी कथा कहौं सहलासा । वृंदावन ढिग कीन्होवासा ॥
 आलस रहित कथा हरिकेरी । सुन्यो भजन महँ प्रीति घनेरी ॥
 ग्रहण कियो सद्ग्रंथनि सारा । लिखनेमें परवीन अपारा ॥
 सिंगरे शास्त्र पुराणनकाहीं । लिख्यो अपूर्व आप करमाहीं ॥
 जन संदेह गाँठि वर जोरी । दर्शनमात्रहि ते दिय छोरी ॥
 रास उपासन में दृढ वेशा । कियो भक्ति बहु ग्रंथ हमेशा ॥
 जहँ तहँते जो धन ढिग आवै । सोयमुनामें डारि सोहावै ॥
 प्रीति साधुसेवामें थोरो । लखि सब कहैं जुरे यकठोरी ॥
 जो धन कालिंदीमें डारै । सो साधुन खिवाय सुख धारै ॥
 जीवगुसांई सुनि तिन वानी । कहै यही सबसों हठ ठानी ॥
 संतपात्र मिलतो है नाहीं । कैसे करिये सेवाकाहीं ॥
 सुनि हवाल यह गुरु ढिग आई । देत भये बहु विधि समुझाई ॥

दोहा—बहु साधुनको बोलि तब, जीवगोसांई गेह ॥

दिय भंडारा एकसों, कह कठोर वचतेह ॥ २ ॥

सवैया—रूप सनातनसो सुनिकै कह्यो जीवगोसांई सों साद-
 रवानी ॥ संतन सों अस भाव करो नाहिं सेवहु संतवरै हरि मा-
 नी ॥ सोसुनि जीवहूँ नम्र महा करैं संतन सेवा सदा सुखसानी ॥
 नारिको आनन देखिहँना कबहूँ प्रण ऐसो लियो मन ठानी ॥ १ ॥

दोहा—मीराजी ब्रजमें गई, ते निज भक्ति लखाय ॥

सो प्रण दियो छोड़ाय सो, मीरा कथा सोहाय ॥ ३ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्योक्तलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

अथ अलिभगवानकी कथा ॥

कवित्त घनाक्षरी—अलिभगवान नाम भये संत कथा तासु क-
हों रामचंद्रजूकी कीन्ही है उपासना ॥ और देवको न सेव कीन्हो
गुरु परंपरा यही रह्यो भाव एक समै मोदकै घना ॥ वृंदावन
आंय रास कृष्णको निहारि नय तामें छकि राम मूर्तिहूमें कि-
यो योजना ॥ रासहिंविहारीयेऊ सुन्यो या हवाल गुरु वृंदावन
आये तिन्हें शीशनाय या बना ॥ १ ॥

सवैया—रासविहारी स्वरूप सदा हियरे मम रामको रूप सो
हावै ॥ सोई रह्यो उरमें वसिहै नहिं औरको रूप दृगै दर्शावै ॥
दीन अशीश गुरू सुनि वैन या ध्यावहु राधिकारौन जो भावै ॥
श्रीगुरुदेवके पायन धै शिर कृष्णहीं ध्यानमें नैन छकावै ॥ १ ॥

दोहा—देखि गुरू अलि यह दशा, कह सब एकै रूप ॥

मग्न रहो यहि परमसुख, धनि तुम संत अनूप ॥ १ ॥

तबते अलि भगवान किय, वृंदावनै निवास ॥

कथा अमित मैं इत कियो, तिनको कछुक प्रकास २ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यंकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

अथ गोपालभट्टकी कथा ॥

दोहा—श्रीगोपाल भट्टकी कथा, कहों सुनत सुख छाव ॥

राख्यो शालग्राममें, राधा रमणहि भाव ॥ १ ॥

प्रेम लक्षणा भक्ति दृढ़ाई । राग भोग बहु करैं बड़ाई ॥

वृंदावन माधुर्य अगाधा । ताको स्वाद अपूरव साधा ॥

रहे जे सत्संगहि में जेऊ । वाही रीति गयेहै तेऊ ॥

सब जीवनके गुणके ग्राही । ग्रहण करैं अवगुणकोहु नाहीं ॥

यक दिन कहूं लेनगे झांकी । तहां अपूर्व शृंगारहि ताकी ॥

रुदन करनलागे अस भाषी । निज मनमें अस है अभिलाषी ॥
 ऐसे पग मुख नयननहुँ हाथा । सहित होत जो मेरेहु नाथा ॥
 तौ मैंहूँ शृंगार अस करतो । गहना अरु पोशाक पहिरवतौ ॥
 ऐसो मनमें करि सब रैना । रोवत दियो विताय अचैना ॥
 मज्जन करि जो होत सबेरै । मंदिर जाय खोलि पट हैरै ॥
 शालग्राम शिलाके रूपा । सब अंगन युत लख्यो अनूपा ॥
 शिला पृष्ठके देशहि माहीं । पूरबही सो रह्यो तहांहीं ॥

दोहा—पट भूषण पहिरायकै, कीन्ह्यो तब शृंगार ॥

वृंदावनमें अजहुँसो, मूरति लसति अपार ॥ २ ॥

श्लोक—तामें भगवत वाक्य जो, कहौं अर्द्ध श्लोक ॥

कह्यो कथा संक्षेप ते, अहै अमित मुद थोक ॥

भगवद्राक्यं उक्तंच ॥

यद्यदिच्छतिमद्भक्तस्तत्तत्कुर्यामितंद्रितः ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे अष्टादशाधिक

शततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

अथ विठ्ठलविपुलकी कथा ॥

कवित्तवनाक्षरी—विठ्ठल विपुल शिष्य स्वामि हरिदासजूके
 परमउपासक भयेहैं कृष्णरासके ॥ एक दिन रास होत देह सुधि
 भूलि गई, गुरुहैं अछत यह मानिकै हुलासके ॥ एक शिष्य
 भेज्यो लाउ गुरुको लेवाय विन, गुरुहै न मोद जे सुपासी सदा
 दासके ॥ प्रेम भरो शिष्यहूको खबरि न रही धाय, आय देख्यो
 आसनमें पास हरिदासके ॥ १ ॥

दोहा—लखि प्रत्यक्ष हरिदासको, निज गुरु विठ्ठल पास ॥

गो लेवाय हरिरासमें, लखिते लहे हुलास ॥ १ ॥

लीला अंतर्द्धानकी, हरिकी भई तहाहि ॥

तब तनु तजि विड्डल विपुल, गे विकुंठपुर काहिं ॥२॥
 सोरठा-ऐसे चरित अनेक, अहैं विदित विड्डल विपुल ॥
 मैं वर्णन किय नेक, विस्तर भय यह ग्रंथके ॥१॥
 इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे
 एकोनविंशाधिकशततमोध्यायः ॥ ११९ ॥

अथ जगन्नाथकी कथा ॥

कवित्तघनाक्षरी-महाप्रभु कृष्णचैतन्य जूके शिष्य सांचे था-
 नेश्वर जगन्नाथ कथा कहौं चारु है ॥ बड़ेसाधुसेवी जगन्नाथपुरी
 जान चह्यो, फेरि गुन्यो कैसे ह्वै संत सतकारुहै ॥ विमुख गये
 जो संत तौ मैं कहा कियो जाय शिष्य चलि एक कियो वचन
 उचारुहै ॥ चलियो विशेषि तीन दिन झांकी करि फेरि इत
 चलिऐहैं कियो यही निरधारु है ॥ १ ॥

दोहा-जब त्रय दिन जगन्नाथ दिय, झांकी वरही माहिं ॥

तब अस गुणि रहिगे महा,साधु प्यार हरि काहिं ॥१॥

कवित्त घनाक्षरी-एक दिन स्वप्नहीमें कह्यो भगवान हम कूप परे
 हमको पधारिये निकासिकै ॥ थानेश्वर जगन्नाथ तब उठि प्रात
 बोलि संतन निकासि तिन्हें थाप्यो मोद राशिकै ॥ पुत्र एक अ-
 पढ़के शोकहीमें बैठे रहे एक श्लोक हरि कृपाको प्रकाशिकै ॥
 दियोहै सुनाइ सो पढ़ाय दियो सुतकाहँ सुत कंठवाणी वसीमूढ़
 ता विनाशिकै ॥ २ ॥

दोहा-विद्याशक्ति भई प्रबल, तिनके बहु इतिहास ॥

विस्तर भयते मैं कियो, वर्णन कथा समास ॥ २ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

विंशत्युत्तरशततमोध्यायः ॥ १२० ॥

अथ लोकनाथजीकी कथा ॥

कवित्त घनाक्षी—कृष्णचैतन्य शिष्य लोकनाथजीकी कथा
कहौं राधा कृष्ण लीला रँगो जिनको है मन॥जलमें ज्यों मीन योंही
लीन रहै भागवत प्राण तुल्य मानै ताको जौन सुनै अनुछन ॥
| एक समय रामतको गमने समाज संत साज युत ठाकुर चुराय
लीन्हें चोरगन॥कछु दूरि जाय भये अंध चोर आय ढिग ठाकुर
दैं चरण पकरि अरप्यो है तन ॥ १ ॥

दोहा—लोकनाथ हरि रसिक की, रीति प्रतीति सिखाय ।

चोरन उर करि शुद्ध अति, जाहु सु दियोरजाय॥१॥

सोरठा—तिनके अमित चरित्र, पुहुमीमें संतन विदित ॥

कर्णन करन पवित्र, वर्णन किय संक्षेपते ॥ २ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे एकविंशोत्तरशत

तमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

अथ मधुगोसांईकी कथा ॥

छंदचौबोला—मधू गोसांई कथा कहौं गृह तजि सुखछाये

कबहिं लालको लखौं वेणु टेरत मन भाये ॥

यही लालसा किये सपदि वृंदावन आये ॥

तजे भूख अरु प्यास कुंज कुंजनमें धाये ॥ १ ॥

भक्त लालसा जानि कालिंदीके तट माहीं ॥

लख्यो बजावत वेणु चेनु सो नँदसुत काहीं ॥

लियो धाय धरि तबहिं प्रीति भरि मधू गोसांई॥

प्रतिमा है हरि गये लिहे मुरली तेहि ठाई॥२॥

मुरालि मनोहर मूर्ति अजहुँ वृंदावन सोहै ॥

क्षण क्षण सुछवि नवीन तकत वरवस मनमोहै ॥

ऐसे चरित अनेक दियो इत नेक सुनाई ॥
 कृष्णदासकी कथा कहौं अब अति सुखदाई ॥३॥
 जाहि सनातन रहे पूजते संत सनातन ॥
 मदनमोहनै नाम मूर्ति सो पाय प्रेमघन ॥
 पूजन कीन्ह्यो भट्ट नारायण शिष्य भये जिन ॥
 को वरणै यश रह्यो कृष्ण अनुराग भूरि तिन ॥४॥
 अबलों वाही रीति राग अरु भोग सदाहीं ॥
 होत मदनमोहनै केर वृंदावन माहीं ॥
 कृष्णदास पुनि तजि शरीरहरिधाम पधारे ॥
 पंडित कृष्णहुदास काहैं वरणों सुखधारे ॥ ५॥
 वृंदावन करि वास मूर्ति गोविंदचंद तहैं ॥
 रहे रूप रस मग्न सदा तिनके प्रमोद महैं ॥
 हरिदासनमें प्रीति करतभे तैसहि भारी ॥
 छाय रह्यो यश गये अंत हरिधाम पधारी ॥६॥
 श्रीभूगर्भ गोसांई कथा अब करों बखाना ॥
 वृंदावन करि वास लियो कुंजन सुख नाना ॥
 कृष्ण राधिका रूप माधुरीमें अति छाके ॥
 संतनसेवा कियो सदा हरिसम दृग ताके ॥ ७॥
 मानस पूजन राग भोग हरिको नित ठानी ॥
 पर विभूतिगे अंत समय तनु तजि सुखदानी ॥
 परमरसिक जे संत दरशको तिनके आये ॥
 परिचै अहैं अनंत कह्यो मैं कछु सुख छाये ॥८॥
 काशीश्वर गोस्वामि कथा वरणों सुख माहीं ॥
 रहे वेष अवधूत गये नीलाचल काहीं ॥
 संत कृष्ण चैतन्य महा प्रभु आज्ञा पाई ॥

आये वृंदावनहि देखि अनुराग महाई ॥ ९ ॥

जुरिकै सबै महानुभाव गोविंदचंदकी ॥

सेवा दीन्ह्यो सौं पि अहै जो अति अनंदकी ॥

भावसिंधुमें मग्न सदा दै दरश जनन कहँ ॥

भवसागर जो महाअगम सो सुगम कियो तहँ ॥ १० ॥

इ० रा० क० यु० उत्तरार्द्धे द्वाविंशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

अथ रांकाबांकाकी कथा ॥

दोहा—रांका बांका विय भये, पंढरपुरके वासि ॥

रांकाकी बांका तिया, कहौं कथा सुखराशि ॥ १ ॥

नामदेव तेहि देशहि माहीं । होत भये प्रिय संतन काहीं ॥

ते दोउ भक्त भये बड़भागा । परधन किय न स्वप्न अनुरागा ॥

लकरी बीनि जीविका करहीं । नाम निरंतर हरि मुख धरहीं ॥

सोइ जीविकाते नित अनुछन । करैं साधु सेवन प्रमुदित मन ॥

यक दिन नामदेव हरिसों कह । ये दोऊ सहि सहि विपती मह ॥

संतन सेवन करत सदाहीं । इनको द्रव्य देहु कस नार्हीं ॥

तव स्वप्ने भगवान उचारा । ये न लेत नहिं करत पुकारा ॥

कहा करौं स्वभाव अस देखी । दया होति मोहिकाहँ विशेषी ॥

चलहु परीक्षा तुमको देहीं । अस कहि श्रीपति दीनसनेहीं ॥

नामदेवको संग लेवाई । जाय वनहि हरि रहे छिपाई ॥

यक मोहरकी थैली भारी । देत भये तेहिं मगमें डारी ॥

रांका बांका दोउ प्रभाता । लकरी लेन भये जब जाता ॥

दोहा—आगे पति पाछे तिया, थैली रांका देखि ॥

निहुरि तोपि दिय धूरिते, तियको पीछे लेखि ॥ २ ॥

लोभासक्ति नारि अति होई । लेय तौ जाय धर्म मम खोई ॥

पीछे तिय निहुरत पतिकाहीं । लखिकै आई धाय तहांहीं ॥

कछुक दूरि रांका तव जाई । खड़े भये तिय निकट सिधाई ॥
 कही निहुरिकै मगमें नाथा । कहिये कहा करत निज हाथा ॥
 सुनि रांका तव वचन बखाना । इत थैली धन बहुत लखाना ॥
 तुव भयते नहिं लेइ उठाई । तोपि दियो लै धूरि महाई ॥
 रांका तिय तव रही जो बांका । बोली विहँसि वदन सों बांका ॥
 अवै आपको धनको भाना । मेरे धनको भान नशाना ॥
 रांका तव निज नारि सराही । थैली त्यागि होत भे राही ॥
 नामदेवसों कह भगवाना । तुमको इन आचरण लखाना ॥
 नामदेव लखि तिन आचरना । हारि गये हरि पुनि कह वचना ॥
 औरहु इनको चरित विशेषी । मेरे संग लेहु अब देखी ॥

दोहा—अस कहि हरि गवने वनहिं, नामदेव लै साथ ।

धरिदीन्हे मग ठौर यक, बहु लकरी विनि हाथ ॥३॥

वनाक्षरी—वासुदेव नामदेव दोऊ छिपिरहे फेरि कूहा देखि
 लकरीको जानिकै विरानीहै ॥ वह राह त्यागि रांका बांका
 और ठौर बीनि, लकरीको बोझ सांझ लैकै सुख मानी है ॥ जात-
 भे बजार भगवान दै दरश तिन्हें छातीमें लगाय लियो तेऊ
 विनयठानी है ॥ लाय निज धाम नामदेवसन कह्यो ऐसे प्रभुको
 क्यों कियो दिक्क मेरी कहि वानी है ॥ १ ॥

दोहा—नामदेव तव लै छुरी, गरकाटिबो देखाय ॥

मूढ़ कूटि प्रगटाय हरि, लिय सो म्वहिं न सोहाय ॥४॥

नामदेवकी जो कथा, वर्णित यह तेहिं ठाम ॥

कर पसारि रांका मुदित, लै संग बांका वाम ॥ ५ ॥

धारे चिरकुट वसन पुनि, गिरो चरणमें आसु ॥

तकि हरि कहत नवसनतौ, पहिरहु भल सहुलासु ॥६॥

चोरमात्र करि धारणै, हरि आज्ञाते दोउ ॥

विचरि जगत दै दरश किय, शुचि जो अघिरह कोउ ॥
 रांका बांकाकी कथा, यहि विधि कियो वखान ॥
 जाहि सुनत उपजत अहै, हरिमें भक्ति महान ॥ ८ ॥
 इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे त्रयो
 विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

अथ खोजाजीकी कथा ॥

दोहा—खोजाजीकी यह कथा, कहीं सुनहु चितचाय ॥
 खोजा गुरु हरिभावना, में पटुरहे बनाय ॥ १ ॥
 तेहि तनु तजन समय जब आयो । वचन शिष्यसों तबहिं सुनायो
 घंटा एक बांधि इतदेहू । ताको हेतु कहीं सुनिलेहू ॥
 तनु तजि जब हम हरिके धामा । जैहैं तब बजिहै अभिरामा ॥
 छूटत भयो गुरू तनु जबहीं । घंटा बजत भयो नाहिं तबहीं ॥
 तब खोजा चिंता कीन्ह्यो मन । मम गुरु कहां रमे हैं यहि क्षन ॥
 गुरु जस तनु त्यागनके काला । पौढ़े रह तैसही उताला ॥
 खोजा पौढ़ि सामुहे माहीं । निरखत भये आम तरु काहीं ॥
 पकीसाह यक रहै तहांई । गुरुकी दृष्टि परी तेहि ठाई ॥
 तहैं रहे रमि गुरु तनु त्यागी । गुणि फल तोड़ि लियो सुख पागी
 ताको फारि जंतु तेहिं भीतर । लघु लखि काढ़ि दियो तेहिं बाहर
 जब वह जंतु कियो तनु त्यागा । तब गुरु हरिदिग गे बड़भागा ॥
 घंटा बाजत भयो दराजा । तब सिंगरे जुरि संत समाजा ॥
 दोहा—शिष्य योग्यता प्रबल लखि, गुरुप्रभाव अनजानि ॥
 करि विचार मन ठीकदै, कहत भये मृदुवानि ॥ १ ॥
 सवैया—सुंदर पक फलै लखिकै गुरु अर्पणकै हरिकी परसादी
 लेन हितै लघुजंतु भये हरिदै परसाद तिन्हैं अहलादी ।

आपने धाम पठायो सदा परसाद हरीके रहेते सवादी ॥
 पूरणसो भगवंत कियो यह खोजाकथाकरै संत अवादी १
 इति श्रीरामरसिकावल्यांक० उत्तरार्द्धचतुर्विंशत्यु
 त्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

अथ लड्डूभक्तकी कथा ॥

दोहा—लड्डू भक्त कथा कहौं, लीन्हें संत समाज ॥

चले तीर्थ मग मिलो यक, विमुखी देश दराज ॥ १ ॥
 जहँ मनुष्य को देवी काहीं । दै बलि करँ प्रसन्न सदाहीं ॥
 पाप पगे तहँके जन भूरी । लखि यक द्विजसुतको सुख पूरी ॥
 देवीको बलि देवे हेतू । चले ताहि लै देवि निकेतू ॥
 रोदन करत मातु तेहि धाई । लड्डूस्वामि पास चलि आई ॥
 सब हवाल सो गई सुनाई । सुनत स्वामि तब अति दुखछाई ॥
 चले आपहीं उठि अतुराई । दियो ब्राह्मणी तनय छोड़ाई ॥
 वाके औजी आप सुखारी । लड्डू भक्त गये पगु धारी ॥
 भक्त तेज तापित देवी तहँ । धरिँकै महाकराल रूप कहँ ॥
 प्रतिमा फारि निकसिकै आसू । सब विमुखनको कियो विनासू ॥
 आगे लड्डू भक्तहि केरे । करिँकै नृत्य मोद लहि टेरे ॥
 होत भई द्रुत अंतर्ध्याना । लखिस्तुत किय संत अमाना ॥
 संत रहे जे तिन सँगमाहीं । लिखेदेत तिन नामनकाहीं ॥

दोहा—पारिख सीवाराम अरु, उदा वो हथराम ॥

जगन्नाथ सीवा अउर, संतनरायण नाम ॥ २ ॥

घनाक्षरी—गोपालकुंवर अरु गोविंद भांडिल्य छीत, हरिना-
 म दीना औ अनंतानंद जानिये ॥ नारद औ श्यामदास उद्धव
 ध्रुव भगवान हरिनारायणहु त्यों श्यामदास मानिये ॥ कृष्णजी-

वन विहारी गंगादास कृष्णदास कुंठा किंकरहु विसरामदास गानिये॥खेमसोंटा गोपानंद जयदेव राघौदास, परमानंद उद्धवगोमा कालख बखानिये ॥ १ ॥

दोहा—खेम पँडा भगवान अरु, चीधर और प्रयाग ॥

पूर्णविनोदी भटल अरु, वनवारी युतराग ॥ ३ ॥

संत नृसिंह दिवाकरहु, जगन्नाथ सुकिशोर ॥

लघु उद्धव अंगज बहुरि, नाम सलूधे और ॥ ४ ॥

बीठल परमानंद अरु, केशव खेमहुदास ॥

इते संत निवसत सदा, लड्डूभक्तहिं पास ॥ ५ ॥

ते संतन युत शुचि कियो, लड्डू विमुख सो देश ॥

ऐसे चरित अनेक है, मैं वरण्यो यह वेश ॥ ६ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेपंचविं-

शत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

अथ संतभक्तकी कथा ॥

दोहा—संतभक्त इतिहास यह, सुनौ सबै बड़भाग ॥

संतन सेवामें रह्यो, जासु बड़ो अनुराग ॥ १ ॥

भिक्षा मांगि रोज लैआई । करै साधुसेवा सुखदाई ॥

यक दिन साधु गेह बहु आये । तिनसों पूछत भये सुहाये ॥

संत कहाँहैं देहु बताई । सुनि सो कही कोप अति छाई ॥

चूल्हे संत लेहु चलि हेरी । सुने संत अस गिरा करेरी ॥

तेहि तियको अभक्त मन जानी । तबते लौटि चले सुखमानी ॥

तौलौ संत आयगे गेहू । सुनि हवाल धाये युत नेहू ॥

संतनको करि विनय महाई । लाये अपने अयनलेवाई ॥

संत कहे तेहि नारि हवाला । बोले संत सत्य कहु वाला ॥

मैं चूल्हेहीकै हित लागी । गयो बरै जामें वड़ आगी ॥
होय पाक बहु संतन केरो । सुनत लहे ते मोद घनेरो ॥
पुनि जेउनार संत बनवाई । ते संतनको दियो जेवाई ॥
भोर माइकेते तिय भाई । आये रचि जेउनार बनाई ॥

दोहा—आयपरे बहु साधु तहँ, सो तिय तिनके हेत ॥

मोटी रोटी बनैकै, बनयो साक निकेत ॥ २ ॥

फेरि लेनगे जल बहु दूरी । बोलि संत संतनको भूरी ॥
भोजन हित दीन्ह्यो बैठाई । बैठायो यक थल तिय भाई ॥
भाइन हित तिय पाक बनायो । सो संतन परुस्यो सुख छायो ॥
रच्यो पाक जो संतन काहीं । सो तिय भाइन दियो तहांहीं ॥
पानी लैकर सो तिय आई । अँगुली रेत नक तेहिं ठाई ॥
पतिसों कही वचन दुख पाई । तुम मेरो लियो नक कटाई ॥
रेतत घीच आपनी संता । बोल्यो वचन तबै मतिवंता ॥
रे दुष्टिनि जब यमके दूता । कटिहैं मार घीच हतिजूता ॥
तब तू करिहै कान सहाई । सो मोको अब देहि बताई ॥
पतिके वचन सुनत सो नारी । संतनमें लखि पात रति भारी ॥
आनन सों बहु भाँति सराही । वही रीति गहिलियो उछाहीं ॥
ऐसो संतनमें अनुरागा । जानिलेहु ताको आते लागा ॥

दोहा—संत भक्तको है कथा, ऐसी विदित अनत ॥

मैं वरण्यो संक्षेपते, लहि सुकृपा सियकंत ॥ ३ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यंकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे षड्विंश

त्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

अथ तिलोक सोनारकी कथा ॥

दोहा—भयो तिलोक सुनार यक, पूरव देशहि माहि ॥

तासु कथा वर्णन कराँ, सेवै साधुन काहि ॥ १ ॥

कौनिहु यत्न जो धनकहुँ पावै । तो संतनको बोलि खवावै ॥
 ऐसेहि बहु दिन बिते . उछाहा । रहै नगरमें यक नरनाहा ॥
 तासु सुताको रह्यो विवाहा । कामदार ताको करि चाहा ॥
 यक जोड़ी जेहर बनवायो । बनवन हित निज घर लैआयो ॥
 सो संतनको दियो खवाई । मनमें संका कछू न लाई ॥
 पंद्रह रोज अवादा आयो । जेहर लेन जनन पठवायो ॥
 जायतिलोक उभय दिन माहीं । देने कहि आये तेहिं काही ॥
 आवत भो दूजो दिन जबहीं । भागि तिलोक गयो डरितवहीं ॥
 राजा पुनि बोलवावत भयऊ । तब हरिवपु तिलोकधरिलयऊ ॥
 जेहर लै निज पाणि अनूपा । करि सलाम चलिकैठिगभूपा ॥
 नजर कियो नृप सभा समेता । देखतहीं ह्वैगयो अचेता ॥
 दै तिलोकको बहुत इनामा । विदा कियो सो धन धरिधामा ॥

दोहा—हरि तिलोक वपु संत बहु, करि भंडारा फेर ॥

संत वेषको धारिकै, चलि तिलोकके नेर ॥ २ ॥

सोरठा—दै प्रसाद कह वैन, कालिह तिलोकसोनार ने ॥

किय भंडारा अैन, संतनको बहु बोलिकै ॥ १ ॥

सुनतहि कह्यो तिलोक, दूसर कौन तिलोक है ॥

करि शंका निज ओक, आय महीप इनाम को ॥ २ ॥

सुनि हवाललिय जान, कियो कृपा श्रीकृष्ण यह ॥

संत सेव मुदमान, करत जो तापै हरि खुशी ॥ ३ ॥

वर्णन कियो समास, कथा तिलोक सोनारकी ॥

सुनै संत सहलास, अति आदर युत कान दै ॥ ४ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे सप्तविंशत्युत्तर

॥ शततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

अथ प्रतापरुद्रकी कथा ॥

वनाक्षरी—संत जो प्रताप रुद्र गजपतिरह्यो यक, भक्ति अति
ठानि जगन्नाथपुरी गयो है ॥ बहुत उपाय कियो दरश न पायो
तब, करै संन्यास स्वप्न हरि कहि दयो है ॥ करिकै संन्यास तब प्रेम
भरो कृष्ण आगे मत्तसो करन लाग्यो नृत्य मोद छयो है ॥
महाप्रभु कृष्णचैतन्य देखि भाव ताहि, मग्नहै अपार छातीमेंल-
गाय लयोहै ॥ १ ॥

दोहा—सुनि हवाल चर्णन परचो, नीलाचलको भूप ॥

संत सभा में ख्यातभो, ताको भाव अनूप ॥ १ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे अष्टाविंशत्यु

त्तरशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

अथ गोविंदस्वामीकी कथा

छंद—कथा गोविंद स्वामिकी कहों सख्यत्व भावकै ॥

गोविंद संग वाल समय खेलते उरावकै ॥

दियो जनाय बात सो हरी स्वरूप वालकै ॥

गोविंद स्वामि संग आंठि दंड खेल हालकै ॥ १ ॥

जबै गोविंद दाँव देनको परचो तबै भगे ॥

अबै न दाँव देहिगे पुकारने यही लगे ॥

गोविंद गारी देत गो गोविंद पीछुमें तबै ॥

अबैहि दाँव लेउँगो कहां भगाइहों जबै ॥ २ ॥

सवैया—भगि मंदिर भीतर कृष्णगये तब गोविंद भीतर जान लगे ॥

जब पंडन मारि निकासि दियो तब बाहेरही अति कोप जगे ॥

महि ठोंकत डंड उचारत गारिदे तू कदिहै कबलौं न भगे ॥

इत बैठ रहौंगो मैं तेरे लिये नहिं दाँव दियो अहै पूर ठगे ॥ १ ॥

चौबोला—कछुक बारमहँ गयो पुजारी भोगलगावन काहीं॥
 भोग लगै नहिं भया पुजारी शंकित तब मन माहीं ॥
 सोवत रह्यो महंत स्वप्न मे श्रीपति जाय उचारा ॥
 गारी मोहिं गोविंद देतहै भूखो बैठ दुवारा ॥ २ ॥
 तात प्रथम खवावहु वाको जाते तेहिं रिस जाई ॥
 मैं हूं तब पाऊंगो भाजन अस दिय स्वप्न सुनाई ॥
 गोविंदको लेवाय तब लाये पग गहि सबै पुजारी ॥
 भोजन सुभग करायो सादर कोमल वचन उचारी ॥
 आवत थार एक दिन गोविंद राकि कह्यो अस वानी ॥
 मोहिं खवाय प्रथम लालाको फेरि देहु सुखसानी ॥
 कह्यो पुजारी तब महंतसों छुये लेत यह भोगू ॥
 भोग लग्यो नहिं कह महंत तब अबै न तेरे योगू ॥ ४ ॥
 गोविंद कह्यो प्रथम जो याको देते भोग लगाई ॥
 तो यह चलो जात कुंजनमें दूरि देत भटकाई ॥
 ताते देहु खवाय प्रथम मोहिं हूँ मैं रहौं तयारै ॥
 जब लाला खेलन चलिहै तब चलों महं विनवारै ॥ ५ ॥
 हेरन परत नाहितौ मोको सुनि अस गोविंद बैना ॥
 नयन सजल सबके ह्वैआये पूरित उर अति चैना ॥
 एक दिन शौच क्रिया लालनको करत सो गोविंद धाई ॥
 टोरि टोरि अकवनकी बौड़ी मारन लग्यो सचाई ॥ ६ ॥
 तब लालहु उठि गोविंदकाहीं मारि बैठि पुनि जाहीं ॥
 ऐसो कियो सख्यत्व भावसो विदित रसिक जनकाहीं ॥
 चरित विचित्र ऐसही तिनके लेहु सबै तुम जानी ॥
 मैं कछु कियो वखान हेतु निज करन पुनीतहिं वानी ॥ ७ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे एकोनत्रिंशो-

चरशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

अथ गंगामालीकी कथा ॥

दोहा—वसनहार लाहौरको, गंगा माली एक ॥

रह्यो तासु वर्णन करौं, कथा सुखद सविवेक ॥ १ ॥

विधवा रही पुत्रकी नारी । तासों कह्यो वचन सुखधारी ॥
लेहि मानि पति श्रीपति काहीं । लेहु गेह धन सब मम नाहीं ॥
कह्यो नारिहूं सो पुनि वानी । जन्म सफल करु हरि रति ठानी
कही नारि मोहिं लालाकेरी । सेवा पूजा देहु घनेरी ॥
निरखि प्रेम अति निज तिय काहीं । हरिकी सेवा पूजा माहीं ॥
गुंजा माली दियो लगाई । फेरि सौं पि गृह धन समुदाई ॥
जाय आप ब्रज कियो निवासा । तहँको चरित कहौं अब खासा ॥
देहिं जहां ठाकुर पधराई । खेलैं तहँ बालक बहु आई ॥
खपरा माटी ईटहु केरे । खेलहिं खेल बनाय घनेरे ॥
इनके ठाकुर पर उड़ि धूरी । परै निरखि सो लड़कन दूरी ॥
दियो भगाय मारि करि रोषा । रज भरि दीन्हे दै करि दोखा ॥
जाय पुजारी जब ठिगमाहीं । लग्यो लगावन भोगहि काहीं ॥

दोहा—लगे भोग नहिं तब करी, विनती गुंजा नारि ॥

क्यों रूठेहौं नाथसो, मोसों कहो उचारि ॥ २ ॥

घनाक्षरी ॥

मंदिरके भीतरते वाणी यों प्रगट भई बालकन खेल मोहिं लगे
अति प्यारो है । तिनको भगाय दियो भोजन न करों ताते, क-
ह्यो गुंजा आजु भोग लगे धरो थारो है । कालिह लड़कन बो-
लि आपके उपर धूरि, माटी में डराय देहों जाते मोद धारो है ॥
भोग तब लग्यो यदुराजै रघुराज कहै ऐसे वैन गुंजा जब मुखसों
उचारो है ॥ १ ॥

दोहा—ऐसे भाव अनेकहैं, जानि लेहु सब संत ॥

मैं वरण्यो कछु लहि कृपा, नाथ रुक्मिणीकंत ॥ ३ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे त्रिंशदुत्तरशतत

मोध्यायः ॥ १३० ॥

अथ गणेशदेईकी कथा ॥

घनाक्षरी । भूप ओड़छे में भयो मधुकरशाह ताकी, रानीभै गणेशदेई कथा कहौ तासु है। संतसेवी रहै आवैं रोजहीं अनंत संत, एकसंत रह्यो रामि पायकै सुपासु है ॥ एक दिन देखिकै अकेलि बैठि रानी काहँ, साधु वह जाय कह्यो वैन सहुलासु है ॥ देहु धन थैली भरि रानी कह्यो है न यहां, साधु तब छुरी मान्यो रानी जांव आसु है ॥ १ ॥ रुधिर निहारि भय भूपतिकी धारि संत, गयो भागि पट्टी बांधि लियो भूप नारि है ॥ कह्यो न उचारि मुख काहूसों सँभारि यह, कहै कछु वचन न कोऊ शोक कारि है ॥ नृपति पधारि जब गयो ढिगसों निवारि, दियो अबै आवै नहि निकट सिधारि है ॥ अहौं नारि धर्म युत पुनि चारि रोज बीते, नृप जाय पूंछ्यो विथा नवल विचारि है ॥ २ ॥ खोलि कहो कारण विथाको कह्यो फेरि नहि, दुइ चार बार ढाँयो भूप बार बार है ॥ पूंछ्यो जब तब कह्यो भर्म नहि कीजै नाथ, दोष नहि धारौ तामें करहु उचार है ॥ नृपति कबूल्यो तब कह्यो सो हवाल सब, जेहि विधि मान्यो छुरी संत अविचार है ॥ क्षमा लखि रानीकी सराहि बहु धन्य करि, कियो है प्रदक्षिणा नरेश मोदवार है ॥ ३ ॥

दोहा—भूषण तू मम गेहकी, जेहि कुल कोउ हरिभक्त ॥

होवे सो कुल धनि विदित, यह प्रमाण बुध उक्त ॥ १ ॥

श्लोक—सत्पुत्रःकुलभूषणंकुलवधूगंहस्यसंभूषणं
सद्बुद्धिर्धनभूषणंसुजनताविद्यावतांभूषणम् ॥
विद्युद्भूषणमंबुदस्यसरसःपंकेरुहंभूषणं
वाणीनादविभूषणंभगवतोभक्तिःसतांभूषणम् ॥ १ ॥

दोहा—निज तिय में तिय भाव तजि, नृप लीन्ह्यो गुरु मानि ॥
अस गणेशदे रानिको, लेहु सवै जन जानि ॥ २ ॥
तेहि समान तेहि संगमें, भक्त रहीं जे नारि ॥
तिनके नामनको कहूं, सुनहु सवै सुखधारि ॥ ३ ॥
सीता झाली सुमति अरु, शोभावाई नाम ॥
प्रभुता भठियानी बहुरि, गंगा गौरी आम ॥ ४ ॥
जीवा गोपाली सुनौ, नाम उवीठा और ॥
अहै कोमला देवकी, हीरा त्यों शिरमौर ॥ ५ ॥
हरिचेरी बाई भई, परम भक्ति उर धारि ॥
संग गणेशदे रानिके, रहिं सो दियो उचारि ॥ ६ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेएकत्रिंशो

त्तरशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

अथ भक्तगोपालकी कथा ॥

दोहा—रह्यो भक्त गोपाल यक, तासु कहौं इतिहास ।

मानि परमगुरु संतजन, सैवै सहित हुलास ॥ १ ॥
तासु वंशमें यक जन कोई । ह्वै विरक्त गो तीरथ गोई ॥
संतन सेवन सुयश विशाला । सुन्यो जो करत रह्यो गोपाला ॥
भक्त आपने कुल तेहिं जानी । लेन परीक्षा हित सुख मानी ॥
आवत भे गोपाल गृह माहीं । लखतै उठि गोपाल तहांहीं ॥
पूजन करि षोडशहि प्रकारा । सादर मुखसों कियो उचारा ॥

गृह भीतर चलि भोजन करहु। कह्यो सो मोर वचन चित धरहु॥
 नारि वदन में देखत नहिं । सुनि गोपाल कह मैं तिय काहीं॥
 देहों करि किनार प्रभु चलिये । सुनिजे गृह भीतर कहि भलिये ॥
 तहँको इक निहारि दिय नारी । तब सो संत कोष उरधारी ॥
 मुख गोपालके थापर मान्यो । तब गोपाल कर मीजि उचाच्यो॥
 मेरो मुख आति अहै कठोरा । हाथ पिरात होयगो तोरा ॥
 तब सो संत गहि चरण गोपाला। अपनो यह कहि गयो हवाला॥
 दोहा—कैसी सेवा संतकी, करत परीक्षा लेन ।

आयों तेरे निकट मैं, तेरे सम कोउ हैन ॥ २ ॥

सोरठा—ऐसे भाव अनेक, संतनके जानहु सबै ।

मैं वर्णन किय नेक, विस्तर भय यहि ग्रंथके॥१॥

इति श्रीरामरसिकावलयांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे द्वात्रिंशो

त्तरशततमोऽध्यायः १३२ ॥

अथ लाखानामकी कथा ॥

सोरठा—मारवाड जो देश, तहँको वासी भक्त यक ।

लाखा नाम हमेश, करै संतसेवा सतत ॥ १ ॥

भोजन संतन जबहिं करावै । मोद अनंत उरहिं तब पावै ॥
 परचो अकाल बड़ो यक काला । आवनलगे संत बहु हाला ॥
 तब संकेत अन्नको जानी । तजन चह्यो सो थल विज्ञानी॥
 स्वप्न दियो तब हरि निशि आई । तुवहित किय यक यत्न सुहाई॥
 गोहूँ काल्हि एक गाड़ी भर । लगता भैंसी यक तुव घरपर ॥
 ऐहै सो गोहूँ कुठली भरि । औनातरी तासु लीजौ करि ॥
 छेतबाहु गोहूँ तहँ तेरे । कुडुला भरौ रहै गो हरे ॥
 दूध भैंसिको दिह्यो जमाई । ताहि भांड बहु मठा बनाई ॥

रोटी छाँछ तौन संतन कहँ । रोज खवाय रहो निज घरमहँ ॥
 ऐसो स्वप्न देखि निशि जागी । तियसों कह हवाल सुखपागी ॥
 नारि कह्यो यह सत्यहिं होई । कहों सो जेहि विधि आयो सोई ॥
 दोहा—रहै गावँ यक निकट तहँ, जमींदार बहु भाय ॥

रहे भयो धनहीन यक, तब सिगरे जुरि आय ॥ २ ॥
 पत्ती दियो लगाय सुजाना । जामें वोहू होय समाना ॥
 तहँ कोउ सज्जन बैठ तहांहीं । बोलत भयो वचन सुखमाहीं ॥
 यह व्यवहार भयो अति नीको । कछु परमारथ करिवो ठीको ॥
 लाखा भगत संत अनुरागी । चलो जात सो निज घर त्यागी ॥
 ताते यहि पत्तीमें थोरा । देहु बाहुको यह मत मोरा ॥
 जामें सेवा साधुन केरी । चली जाय वाकी विन देरी ॥
 अस विचारि भैंसी दुधारिवर । गोहूँ मन पचास गाड़ी भर ॥
 पठै दियो लाखा घरमाहीं । लाखा बोलि संतजन काहीं ॥
 जैसो कह्यो स्वप्न भगवाना । तेहि विधि भोजन दिय सविधाना
 तामें यक श्लोक प्रमाणा । लिखेदेत जो विदित पुराणा ॥

श्लोक—अष्टादश पुराणानां व्यासस्यवचनद्वयं ॥

परोपकारः पुण्याय पापायपरपीडनं ॥ १ ॥

एक समय दंडवत प्रणामा । करत दरशहित पुरी ललामा ॥
 मारवाड़ते लाखा आये । जब जगदीश पुरी नियराये ॥

दोहा—जगन्नाथ तब स्वप्न दिय, पंडनको निशि माहिं ॥

लावहु म्याना में इतै, लाखाभक्तहि काहिं ॥ ३ ॥

पंडा तबहि पालकी लाये । लाखा लखि अस वचन सुनाये ॥
 मम प्रण भंग करहु तुम नाहीं । जानदेहु योंहीं मोहिंकाहीं ॥
 पंडन कह्यो पूर प्रणभयऊ । करहु निदेश नाथ जो दयऊ ॥
 यहू हुकुम जगदीश सुनायो । सुयश सुमिरनी मोर बनायो ॥

लाखा मोहिं देहि पहिराई । अति प्रसन्न मैं मम ढिग आई ॥
 तब लाखा चढ़ि सिविका माहीं । जाय दरशि सुख लह हरि काहीं
 रहै सुता यक तेहि हित व्याहा । जुरै जो धन सो सहित उछाहा ॥
 सब संतनको देय खवाई । कहि मम धन संतनको आई ॥
 योंहीं बहु धन सेवक लाई । जोरै संतत देय बोलाई ॥
 जगन्नाथ तब स्वप्नसुनायो । व्याह करौ लै द्रव्य सुहायो ॥
 तबहुँ परचो लाखा मन नाहीं विदा न भये चले घरकाहीं ॥
 जगन्नाथ तब कियो उपाई । ताके सुता व्याह हित भाई ॥

दोहा—मारग महँ यक भूप रह, स्वप्न दियो तेहिकाहँ ॥

आवत लाखा भक्ततेहि, जाय न निजघर माहँ ॥ ४ ॥

हुंडी मुद्रा सहसकी, आवति सो तेहिं देहु ॥

राजा सुनि सोइ करतभो, लाखासों कह लेहु ॥ ५ ॥

लाखा मुद्रा पायसो, सौमें करि सो व्याह ॥

नौशत संतनको दियो, अशन कराय उछाह ॥ ६ ॥

जानि लेहु सब संत तिन, ऐसे चरित अपार ॥

मैं वण्यौं संक्षेपते, करिकै विमल विचार ॥ ७ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्ल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे त्रयस्त्रिंशोत्तर

शततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

अथ सूरमदनमोहनकी कथा ॥

दोहा—सूर मदनमोहन कथा, कहौं परमपटु गान ॥

राधाकृष्ण उपासना, कीन्हौं सहित विधान ॥ १ ॥

नाममात्र तिनको रह्यो, सूरदास विख्यात ॥

सब लोगनके नयनमें, सूर सरिस दरशात ॥ २ ॥

कृष्ण चरित्र देखिबे काहीं । अम्बुजसे युग नयन सुहाहीं ॥

रहे पूर्वही साहु देवाना । लै मुद्रा त्रैलाख सुजाना ॥
 सौदा चले खरीदन काहीं । सो तो लेत भयेहैं नाहीं ॥
 साधुन सब धन दियो खवाई । शाह जबै दिय हुकुम पठाई ॥
 तब छकरामें उपल भराई । दिय पठाय चिट्ठी लिखवाई ॥
 आधीरात आपगे भागी । ऐसो लिख्यो भीतिमें पागी ॥

तीनि लाख तेरहहजार सब साधुन मिलि गटका ॥

सूरदास मदनमोहन आधीरातिमें सटका ॥ इति ॥

अकबर शाह बांचि सो पाती । ह्वै प्रसन्न मन अति मुदमाती ॥
 बोलि तुरंत मदन मोहन कहैं । खातिर करि पठवायो ब्रजमहैं ॥
 आय मदन मोहन ब्रज काहीं । मदन गोपाल मंदिरे माहीं ॥
 वसे महंत कियो सत्कारा । यक दिन आधीरात मँझारा ॥
 लेन परीक्षाहेतु महंता । कह्यो पुजारीसों मतिवंता ॥
 होते पुवा समय यहि माहीं । भोग लागतो तो हरिकाहीं ॥

दोहा—सुनत मदन मोहन तहां, किय मुहूर्त लौं ध्यान ॥

प्रेम देखितेहि कृष्ण तब, पुवा लादि छकरान ॥३॥

पठै दियो काहूके हाथा । मंदिर द्वार आय सो साथी ॥
 छकरनको ठराय कह वानी । पुवा हरिहि अरपौ सुखमानी ॥
 सुनि महंत तब मदन गोपालै । भोग लगाय प्रीति युत हालै ॥
 दियो खवाय सैकरो संतन । लेहु प्रभाव जानि असनिजमन ॥
 फेरि मदनमोहन सुख छायो । यक पद ऐसो तुरत बनायो ॥
 तामे लिख्यो संत पनही को । रक्षक मैं कहवाऊं नीको ॥
 सो पद सुनि कोउ संत उदारा । लेन परीक्षा हेतु विचारा ॥
 पहिरि उपानह मंदिर आई । दरशन लेन चलयो अतुराई ॥
 लखि कह सूर धारि इत जूता । दरशन करि आवो मजबूता ॥
 संत कह्यो लै जैहैं कोई । सूर कह्यो मैं ताकत सोई ॥